महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६१ **अंक** : २२
दयानन्दाब्दः १९५
विक्रम संवत्: मार्गशीर्ष कृष्ण २०७६
कलि संवत्: ५१२०
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

नवम्बर द्वितीय २०१९

अनुक्रम

०१. वेदों में श्रीराम आदि की कथाः...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-४१	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. भव्य ऋषि मेला सम्पन्न	कन्हैयालाल आर्य	१५
०५. काशी के छल-बल कोलाहल में...	देवनारायण भारद्वाज	१८
०६. वेद में स्त्रियों की स्थिति	पं. यशःपाल	२०
०७. गुरुकुल की ओर से	ब्रह्मचारी नीलेश	२२
०८. संस्था की ओर से...		२६
०९. काशी में ऋषि दयानन्द और...	डॉ. ज्वलन्त कुमार	२९

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

वेदों में श्रीराम आदि की कथा: एक तर्कहीन भ्रान्त धारणा-१

श्री रामचन्द्र और उनका अयोध्या स्थित मन्दिर आजकल विश्व-पटल पर सर्वाधिक चर्चा में हैं। लगभग १५० वर्ष पुराने मन्दिर प्रकरण पर कुछ ही दिनों पहले सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी आया है। श्री राम आदर्श शासन के प्रतीक हैं, इतिहास-पुरुष हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, भारतीय संस्कृति-सभ्यता के पालक हैं, भारतीय जन-मानस के प्रेरणास्रोत हैं। ऐसे महापुरुष तथा अन्य महापुरुषों के इतिहास और स्मृतियों को सुरक्षित रखा ही जाना चाहिए। किन्तु इस अवधि में मीडिया के माध्यम से ज्ञात श्रीराम के पक्ष में जो तर्क प्रस्तुत हुए हैं, वे आश्चर्यजनक हैं। प्रसारित तर्कों में कहा गया है कि "**श्रीराम की कथा वेदों में प्राप्त होती है।**" यह कथन नितान्त तर्कहीन, भ्रामक और हास्यास्पद है।

वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। अधिकांश लोगों और मत-मतान्तरों में यह प्रवृत्ति पनप गई कि वे वेदमन्त्रों का विकृत अर्थ करके अपने विचार को प्राचीन सिद्ध करने के लिए, उसको वेद मन्त्रों में प्रदर्शित करने का भ्रामक प्रयास करते हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण और देवी-देवताओं के भक्तों ने अपने-अपने आराध्य की कथा वेदों में पाये जाने का मिथ्या दावा किया है। वेदों में आये '**महावीर**' पद को देखते ही जैनियों ने उसको **महावीर स्वामी** का वर्णन घोषित कर दिया। एक कबीरपन्थी ने वेद में '**कवि**' ईश्वर-विशेषण को पढ़कर उसको **कबीर साहब** का वर्णन लिख दिया। अन्य मतावलम्बी भला क्यों पीछे रहते! ईसाई मिशनरियों ने हिन्दुओं को भ्रमित करने के लिए वेदों में आये ईश्वर के '**ईश**' नाम को **ईसा मसीह** का वर्णन घोषित कर दिया। एक शोधक प्रवक्ता ने तो चमत्कार की सारी सीमाएँ पार कर दीं। वेदों में आये '**मोह**' और '**मद**' शब्दों में उसने **मोहम्मद साहब** का वर्णन ढूँढ लिया तो किसी ने 'अदीना' का 'मदीना' शब्द बना लिया। बस, अब शोध की एक ही कमी रह गई है कि अब इन शोधकों को अपने-अपने नाम के वर्णन को ढूँढना बाकी रह गया है!! प्रतीक्षा कीजिये कि वेदों पर इस चमत्कार का अत्याचार कब होगा?

साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी इस बात को समझ सकता है कि प्राचीनतम वेदों में, बाद में उत्पन्न होने वाले नवीन व्यक्तियों का इतिहास होना कदापि सम्भव नहीं है। श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों ने भी वेदों का अध्ययन किया था, तो क्या उन्होंने अपना ही इतिहास पढ़ा था? और उन्हें तो ज्ञात ही नहीं हुआ कि वेदों में उनका इतिहास है, किन्तु नये शोधकों को उसका इलहाम हो गया!! ऐसा करके कुछ लोग वेदों की आड़ में साजिश कर रहे हैं और कुछ अन्यजन विकृत अर्थ करके वेदमन्त्रार्थों तथा रामकथा आदि को हास्यास्पद बना रहे हैं और अपने धर्मग्रन्थों के सत्य अभिप्राय को नष्ट कर रहे हैं।

मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों ने कदाचित् यह कल्पना भी न की होगी कि कोई व्यक्ति उक्त सीमा तक भी मन्त्रार्थों को विकृत कर सकता है, किन्तु उन्होंने यह अवश्य सोचा था कि मन्त्रार्थ करते समय स्वेच्छाचारिता, अव्यवस्था, नियमहीनता की प्रवृत्ति उत्पन्न न हो, इसलिए उन्होंने मन्त्रार्थ प्रक्रियाओं का निर्धारण-नियमन किया और इस प्रक्रिया में देवता, प्रकरण, स्वर, पदपाठ इत्यादि का महत्त्व प्रतिपादित किया। इसी उद्देश्य से वेदों के व्याख्यारूप वेदांग-ग्रन्थों की रचना की। महर्षि यास्क ने निरुक्तशास्त्र में मन्त्रार्थों और मन्त्रार्थ पद्धति के सम्बन्ध में पर्याप्त ऊहापोह करके यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि वेदमन्त्रों की व्याख्या प्रकरण और देवता के अनुसार ही करनी चाहिये। इन्हीं के आधार पर मन्त्र का यथार्थ जाना जा सकता है। किन्तु रामकथा आदि के अन्वेषकों को उन वैदिक नियमों से कुछ लेना-देना नहीं है। वे उन सब नियमों को ताक पर रखकर प्राचीन व्याख्याग्रन्थों में प्रस्तुत और प्राचीन-अर्वाचीन भाष्यकारों द्वारा प्रतिपादित अर्थों की घोर उपेक्षा करते हुए नितान्त स्वेच्छाचारिता का प्रदर्शन करते हैं। यद्यपि चारों वेदों में सम्पूर्ण सूक्त तो क्या, एक मन्त्र भी ऐसा नहीं है, जिसमें रामकथा आदि वर्णित हो, तथापि इन लोगों को जहाँ कहीं, जिस मन्त्र में, रामकथा से मिलता-जुलता कोई

शब्द मिल जाता है, उसी मन्त्र को वे रामकथा का वर्णक घोषित कर देते हैं। किसी मन्त्र में उन्हें केवल एक शब्द मिल जाना चाहिये, बस फिर क्या है, उस सम्पूर्ण मन्त्र की रामायण ही बना डालते हैं! और फिर उस शब्द के साथ मन्त्र के शेष पदों की संगति लगाने के लिए व्याख्या की जो कसरत करते हैं तथा अध्याहार की आड़ में जो अद्‌भुत कल्पनाएँ करते हैं, उसे पढ़कर तो सामान्य संस्कृतवेत्ता को भी हँसी आने लगती है। उदाहरण के रूप में अथर्ववेद का एक मन्त्र प्रस्तुत करते हैं–

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्।।

(१.२३.१)

श्रीराम के अन्धभक्तों ने इस मन्त्र का अनर्थ यों किया है–

नक्तंजातास्योषधे= हे चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली तथा भगवद्दर्शन से त्रिताप को नाश करनेवाली अथवा सर्वदोष का नाश करनेवाली! **असिक्नि**= हे मृत्यु से दूर रहनेवाली चिरजीवनी! **रजनि**= हे स्वपति महाराज दशरथ का अनुरञ्जन करनेवाली कौशल्या जी! **इदम्**= इन, **किलासम्**= क्रीडा को फेंक देने वाले, क्रीडाविरक्त, **यत् च**= और जो, **पलितम्**= सफेद केश वाले हैं, उन दशरथ जी को, **कृष्णे**= श्याम वर्ण वाले, **रामे**= अपने पुत्र भगवान् श्रीराम में, **रञ्जय**= आसक्त बना दो। अथवा रामे, कृष्णे, सति सप्तमी के रूप हैं। **जाते** का अध्याहार करना है। फिर इसका अर्थ होगा कि श्यामस्वरूप भगवान् राम के प्रकट होने पर **वृद्ध दशरथ** जी को आप प्रसन्न कीजिये।''

(तत्त्वदीपिका, वर्ष ३, अंक ४)

साधारण से साधारण पाठक इस बात को समझ सकता है कि इस मन्त्र में **रामे** पद के अतिरिक्त कोई ध्वनि ऐसी नहीं है, जो रामकथा के किसी पात्र से मिलती हो। नाम तो इस मन्त्र में न राम का है और न अन्य किसी पात्र का। बस 'रामे' पद देखकर उल्टी-सीधी खींचातानी करके एक मनघड़न्त व्याख्या बना डाली और फिर उसमें अपनी ओर से दशरथ और कौसल्या के नाम भी जोड़ दिये! यह हो गयी उनकी वेदों में रामकथा!!

इसमें पदपाठ और व्याकरण के अनुसार तो अशुद्धियाँ हैं ही, साथ ही इसमें जो रामकथा की बात कही है, वह रामायण में कहीं नहीं है। न इसमें कोई तत्त्व है, न कोई महत्त्वपूर्ण कथन! न इस कथन की कोई व्यावहारिक उपादेयता है। दशरथ तो स्वयं पहले से ही राम के प्रति अत्यन्त प्रसन्न, आसक्त एवं मोहग्रस्त हैं। सब जग जानता है कि राम के वियोग में ही दशरथ का प्राणान्त हुआ था। वृद्धावस्था में पुत्र-प्राप्ति पर दशरथ भावविभोर हो उठे थे। ऐसी स्थिति में यह कथन करना ही निरर्थक है कि ''कौसल्या जी, आप दशरथ को राम में आसक्त बना दो या राम के प्रकट होने पर वृद्ध दशरथ को प्रसन्न कर दो।'' ऐसी-ऐसी व्यवहारविरुद्ध और रामकथा-विरुद्ध बातों की कल्पना की है इन व्याख्याकारों ने!

अब आइये, वैदिक व्याकरण के अनुसार शास्त्रीय शैली में इसके पदपाठ पर दृष्टिपात करें। भाष्यकारों द्वारा स्वीकृत इसका पदपाठ इस प्रकार है–

''**नक्तम् जाता। असि। ओषधे। रामे। कृष्णे। असिक्नि।**

च। इदम्। रजनि। रजय। किलासम्। पलितम्। च। यत्।''

इस पदपाठ से यह जाना जा सकता है कि रामकथा-अन्वेषकों ने किस धृष्टता से पदपाठ को भ्रष्ट किया है। **नक्तम् जाता असि** इन तीन पदों को मिलाकर **नक्तंजातास्य** एक पद बना दिया है। पाठभेद करके **रजय** को **रञ्जय** बना डाला और **रामा कृष्णा** स्त्रीलिंग शब्दों के **रामे कृष्णे** सम्बोधन रूपों को सप्तम्यन्त प्रयोग बना लिया। ऋषियों ने इसी उद्देश्य से पाठों का आविष्कार किया था कि कोई पाठभ्रंशक पाठों को भ्रष्ट न कर सके और कोई अर्थ विध्वंसक अर्थों का अनर्थ न कर सके। यदि कोई करे भी तो वह पहचाना जाये। उक्त पदपाठ से पाठभेद, पाठभ्रंश और अनर्थ की स्पष्ट पहचान हो जाती है।

वेदमन्त्रों के प्रकरण और प्रतिपाद्य विषय पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि पूर्व उद्धृत मन्त्र और सम्पूर्ण सूक्त में कुष्ठ आदि रोगनाशक वनस्पतियों की चर्चा करते हुए रोगनाश की प्रार्थना की गयी है। प्रस्तुत मन्त्र का देवता **वनस्पति** है। आचार्य सायण ने भी इस मन्त्र में **कुष्ठ रोग**

का वर्णन माना है। उन्होंने **किलास** का अर्थ **कुष्ठरोग** और **पलितम्** का अर्थ **श्वेत कुष्ठ** किया है। परवर्ती पौराणिकों ने सायण के अर्थ की भी उपेक्षा की है। यह स्वेच्छाचारिता की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या है? आचार्य सायण ने अथर्ववेद और तैत्तिरीय ब्राह्मण में इसी सूक्त के पूर्व मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार किया है-

''**अथ पञ्चभिर्मन्त्रैः श्वेतकुष्ठरोगं विनाशयति। शरीरं रमणीयं करोति, इति रामा। स्वयं कृष्णवर्णा। श्वैत्यविनाशनेनासितं कृष्णवर्णं तस्मिन् प्रदेशे संपादयतीत्यसिक्नी, तथाविधे हे नीलाख्यौषधे! त्वं नक्तं जाताऽसि अत एवान्धकारवन्नीलवर्णा दृश्यसे...।**''

(तै. ब्रा. २.४.४.१)

''**दृश्यसे। हे रजनि! स्वकीयेन वर्णेन रञ्जनक्षमे ओषधे इदं श्वेतं शरीरं रजय, स्वकीयवर्णेन रञ्जितं कुरु। यत् किलासं श्वेतरोगग्रस्तमङ्गं यच्च पलितं रोमादिकं तदिदं रजयेति। अत्र 'हरिद्रा' रजनीति केचित्।**''

(तै. ब्रा. २.४.४.१)

अर्थात्-'इस सूक्त में वर्णित पाँच मन्त्रों में श्वेत कुष्ठ रोग के निवारण के उपायों का वर्णन है। 'रामा' एक बूटी का नाम है जो शरीर को रमणीय बनाती है। वह आकृति में काले रंग की होती है। 'असिक्नी' वह इसलिए कही जाती है जिससे वह श्वेत त्वचा को काले रंग का कर देती है। इस कारण उसका 'नीला' नाम भी है। क्योंकि वह रात्रि में उत्पन्न होती है अतः वह नीला अन्धकारवत् नीलवर्ण की है। मन्त्र में उस ओषधि से प्रार्थना है कि हे ओषधे! श्वेतकुष्ठ को रंगकर स्वस्थ बनाओ और सफेद केशों को काला कर दो।'

अथर्ववेदभाष्य में आचार्य सायण कृत इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार मिलता है-

''**रामे=व्याधितो जनः अनया ओषध्या रमते इति रामा, भृङ्गराजाख्या ओषधिः। कृष्णे=कृष्णवर्णे, कृष्णवर्णापादिके वा इन्द्रवारुणि। असिक्नि=असितवर्णे, असितवर्णापादिके वा नीलि।**''

अर्थात्- 'रामा' भृंगराज नामक बूटी का नाम है। रोगग्रस्त व्यक्ति उसको पसन्द करता है, इसलिए उसका 'रामा' नाम है। 'कृष्णा' उसका नाम इसलिए है कि वह कृष्ण वर्ण की है, सफेद केशों को कृष्ण वर्ण प्रदान करती है। उसको 'असिक्नी' भी कहते हैं, 'नीली' भी कहते हैं, क्योंकि वह त्वचा को नीलत्व=कृष्णत्व प्रदान करती है।

अन्य भाष्यकारों ने भी इस मन्त्र का रोगविनाशक ओषधि-परक अर्थ किया है। अगले मन्त्र के पदों द्वारा इस अर्थ की पुष्टि और भी सरलता से हो जाती है। उसमें कहा है-

''**किलासं च पलितं निरितो नाशया पृषत्**''

(अथर्व. १.२३.२)

अर्थात्-'हे ओषधि! तू कुष्ठरोग, श्वेतकुष्ठ तथा उसके दागों को नष्ट कर दे।' स्पष्ट है कि उक्त मन्त्र का रामकथा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

रामकथा अन्वेषकों ने पहले मन्त्र में जो शब्दार्थ किया है, उसके व्याकरण के अनुसार तो इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार बनेगा-

''हे ओषधि या कौसल्या! क्रीडाविरक्त और श्वेत बालों वाले दशरथ को यहाँ से पूरी तरह नष्ट कर दे।''

तो क्या इस मन्त्र का यह शब्दानुसारी अर्थ उन्हें स्वीकार है? यदि नहीं, तो फिर उन्हें प्रथम मन्त्र का भी अनर्थ नहीं करना चाहिये। छल की बात तो यह है कि उन्होंने पाँच मन्त्रों वाले एक सूक्त से एक मन्त्र उठाकर व्याख्यात कर दिया, शेष छोड़ दिये। यदि शेष मन्त्रों की भी व्याख्या ये लोग करते तो अपने अनर्थ-प्रपञ्च में स्वयं फँस जाते और वेदों में राम-कथा पाये जाने की बात कहकर पाठकों को भ्रमित नहीं कर पाते! **(क्रमशः)**

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है। - **महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४**

मृत्यु सूक्त-४१

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
आनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे।।

इस वेद-ज्ञान की चर्चा के प्रसंग में हम ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। इसे मृत्यु-सूक्त भी कहते हैं। हमारी चर्चा का मन्त्र है सातवाँ। हमने देखा कि वैदिक काल में या वेद के निर्देश में नारी की क्या स्थिति है, क्योंकि जब भी वेद को मानो वह वेद का काल है या वेद की उपस्थिति जब भी है तभी वेद का काल है। तो जब हम वेद के सिद्धान्तों को, विचारों को स्वीकार करके चलते थे, चलते हैं, चलना चाहें तो हमारी परिस्थिति क्या होनी चाहिए? जैसा आजकल के लोग समझ लेते हैं कि हमारे यहाँ महिलाओं को द्वितीय श्रेणी का नागरिक समझते हैं, नीचा समझते हैं, तुच्छ समझते हैं, यह बात मध्यकाल की है। वेद ऐसा नहीं कहता है। वेद ने तो मन्त्र में इतने सुन्दर-सुन्दर विशेषण दिए हैं- **इमा नारीरविधवाः सुपत्नी।** कहता है कि यह कभी विधवा नहीं होने वाली है, यह सदा सुपत्नी रहती है। **आञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु।** इसका चेहरा सदा खिला हुआ, धुला हुआ रहता है। **अनश्रवः** यह मन से कभी खिन्न नहीं रहती, इसकी आँखों में कभी आँसू नहीं आने चाहिए। **अनमीवा**, यह रोग-रहित होनी चाहिए, स्वस्थ होनी चाहिए। **सुरत्ना**, अलंकृत होनी चाहिए। **आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे।** और यह हमारे घर में अग्रणी बनकर रहती है, श्रेष्ठ बनकर रहती है, निर्देशक बनकर रहती है।

कल हमने इस प्रसंग को देखा था कि जब विवाह संस्कार होता है, उस समय जो बातें कही गयी हैं, उनमें स्त्री का स्थान देखने पर पता चलता है कि ऊँचा है, श्रेष्ठता का है, बराबरी का है। हमने सप्तपदी के सप्तम मन्त्र की चर्चा की थी, **सखे सप्तपदी भव** अर्थात् हम घर में मित्र बनकर रहेंगे, मित्र-भाव से रहेंगे। क्योंकि हमने देखा था कि सब सम्बन्धों में छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा होता है, लेकिन एक सम्बन्ध संसार का ऐसा है जो मैत्री का है, जो नितान्त समानता का होता है, कोई किसी से बड़ा नहीं होता, कोई किसी से छोटा नहीं होता, कोई किसी से कम प्रेम नहीं करता, कोई किसी से अधिक प्रेम नहीं करता। जो प्रेम करते हैं वे इतना करते हैं कि दूसरे को लगता ही नहीं कि यह कम करता है। यह जो मित्रता है, इसके लिए ऋषि दयानन्द ने एक बड़ा सुन्दर वाक्य प्रयोग किया है कि संसार में पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिए पति सबसे बड़े, सबसे अच्छे मित्र हैं। क्योंकि मित्रता के लिए एक परिभाषा है साहित्य में-**पापान्निवारयति योजयति हिताय, गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति। आपद्गतं च न जहाति ददाति काले, सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः** कहता है कि श्रेष्ठ लोगों ने मित्रता का लक्षण किया हुआ है कि जो अपने साथी को पाप से रोकता है, उसको अपराध की प्रवृत्ति से बचाता है और जो श्रेष्ठता है, अच्छाई है, हित है, उसके लिए उसको लगाता है, नियुक्त करता है, जोड़ता है, उसको ऐसा करने की प्रेरणा करता है। उसके दोष और बुराइयों को प्रकाशित करने में उसका विश्वास नहीं है। वह उसके गुणों को प्रकाशित करता है, उसकी अच्छाइयों की चर्चा करता है, उसकी बुराइयों की चर्चा नहीं करता। और जब आपत्ति का समय आता है, तब साथ नहीं छोड़ता, भागता नहीं। सहयोग देता है, विपरीत परिस्थिति में बचाता है, दुःख में साथ देता है। सन्त लोग

इसलिए इसे मित्रता का लक्षण मानते हैं। इसलिए ऋषि दयानन्द ने कहा कि पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिए पति संसार में सबसे अच्छे मित्र हैं। इसलिए कहा, **सखे सप्तसदी भव**। पति-पत्नी सातवाँ कदम एक-दूसरे को मित्र बनाने के लिए, सखा मानने के लिए उठा रहे हैं कि हमारा यह संकल्प है, हमारी यह प्रतिज्ञा है कि हम जीवन में सखाभाव को बनाकर रखेंगे। हम एक दूसरे का ध्यान रखेंगे, एक-दूसरे का चिन्तन करेंगे।

इसी में एक रोचक प्रसंग याद दिलाना चाहूँगा। विवाह संस्कार में एक विधि होती है, **'शिलारोहण'**, क्योंकि जो भी कर्म-काण्ड है, वह प्रतीक है, उससे कुछ बड़ी समझाने की बात है। वधू का जो भाई है, वह वधू का पैर उठाकर पत्थर पर रखता है और वर एक मन्त्र पढ़ता है। **आरोह इमम् अश्मानम् अश्मेव त्वं स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्वपृतनायतः** कहता है कि यह पत्थर प्रतीक है, मजबूती का, दृढ़ता का, स्थिरता का। तुम इस पत्थर पर आरूढ़ होकर संकल्प लो, क्योंकि तुम्हारे अन्दर इसके गुण आने चाहिएँ, इसकी योग्यता आनी चाहिए। यह हमको बता रहा है, पहचान दे रहा है कि **अश्मेव त्वं स्थिरा भव**- तेरे अन्दर भी स्थिरता होनी चाहिए, शत्रु का दमन करने की योग्यता होनी चाहिए। **अभितिष्ठ पृत्यन्तो अवबाधस्व पृतनायतः** जो बाधायें हैं रुकावट हैं, उनको दूर करने का सामर्थ्य होना चाहिए। उसको इतना समर्थ और योग्य बनाया है और उसके लिए यह सोचना और यह कहना कि हम उसको नीचा समझते हैं, यह नितान्त अनुचित है, गलत है। जो भी बात है वह समानता की है, श्रेष्ठता की है, उत्कृष्टता की है।

एक विधि होती है विवाह संस्कार में, उसे कहते हैं, **'हृदयालम्भन'**। यह आलम्भन शब्द कर्म-काण्ड में तो हिंसा में है। उन्होंने इसका अर्थ किया गया है **गो आलम्भन** अर्थात् गाय मार दो, **अश्वालम्भन**- घोड़ा मार दो। लेकिन यहाँ कैसे अर्थ करोगे कि मार दो? यहाँ **'हृदयालम्भन'** का अर्थ है आलिंगन करना, निकट लाना, स्वीकार करना। हृदय के निकट जाकर एक बात की जाती है, हृदय के निकट जाकर एक बात समझाई जा रही है। इस मन्त्र की एक विशेषता है कि यह मन्त्र ब्रह्मचर्य आश्रम में आचार्य और ब्रह्मचारी के मध्य भी पढ़ा जाता है, यही मन्त्र विवाह संस्कार में वर-वधू के बीच में भी पढ़ा जाता है। अन्तर केवल सम्बोधन का रहता है। वहाँ **'बृहस्पतिस्त्वा'** कहता है, यहाँ **'प्रजापतिस्त्वा'** कहता है। वहाँ ज्ञान की बात हो रही है तो बृहस्पति को सम्बोधन है, यहाँ ऐश्वर्य की बात हो रही है, नियम की बात हो रही है तो प्रजापति को सम्बोधन है। मन्त्र का एक-एक शब्द ध्यान देने योग्य है, अनुकरणीय है और यह जो परिस्थिति है कि यहाँ गुरु-शिष्य में कोई बड़ा नहीं है। गुरु शिष्य के प्रति समर्पित है और शिष्य गुरु के प्रति। गुरु शिष्य का ध्यान रखता है और शिष्य गुरु का आदर करता है। उसकी आज्ञा का पालन करता है। अतः दोनों स्थानों पर यह मन्त्र पढ़ा जाता है। जहाँ भी दो हैं, संसार में उन दोनों के बीच का सम्बन्ध यदि आप ठीक रखना चाहते हैं, उनके अन्दर अनुकूलता बनाकर रखना चाहते हैं तो आपको इस नियम का पालन करना चाहिए। यह नियम स्वर्णिम अक्षरों में लिखने योग्य है, बहुत उत्कृष्ट है। मन्त्र है- **मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्** इसमें एक शब्द आया है, जो मुख्य शब्द है, वह है 'व्रत'। सामान्य रूप से व्रत हम नहीं खाने को कहते हैं या ऐसी प्रतिज्ञा को कहते हैं जो हमने धारण कर ली है- मैंने व्रत ले लिया कि टमाटर नहीं खाऊँगा, व्रत लिया कि अमुक स्थान पर नहीं जाऊँगा, व्रत ले लिया कि यह काम करूँगा या हम कह रहे हैं कि आज हमारा व्रत है, आज भोजन नहीं करेंगे। यह व्रत का स्थूल अर्थ है, मोटा अर्थ है। वास्तविक जो इसका अर्थ है, वह इसके शब्दार्थ से पता चलता है। व्रत वरण करने से जुड़ा हुआ है, चुनने से, चुनाव से और चुनाव सदा श्रेष्ठता के लिए होता है। **अव्रतो अमानुषः**- शास्त्र कहता है कि संसार में जिस मनुष्य के पास व्रत नहीं है, वह मनुष्य नहीं है। क्यों? क्योंकि बिना नियम के, बिना व्यवस्था के तो पशु चलता है और यदि मनुष्य भी पशु की तरह चले तो फिर मनुष्य क्या हुआ? इसलिए जो व्रती है, वह मनुष्य है। जो व्रती नहीं है, वह मनुष्य नहीं है।

व्रत धारण करके क्या करना होता है? इसका उद्देश्य होता है, जीवन में उन्नति करना। **इदम् अहम् अनृतात्**

सत्यमुपैमि तद् व्रतम्। कहता है कि जो मनुष्य अवनति से उन्नति की ओर जाता है, अनैश्वर्य से ऐश्वर्य की ओर जाता है, असत्य से सत्य की ओर जाता है, हीनता से श्रेष्ठता की ओर जाता है, उस आगे बढ़ने के लिए जो संकल्प है, उसका नाम व्रत है। जो प्रतिज्ञा है, उसका नाम व्रत है। जो नियम है उसका नाम व्रत है। यह हमारा संसार व्यवस्था में चल रहा है अर्थात् नियमों में चल रहा है, व्रतों में चल रहा है। इसलिए जब हम व्रत की आहुति देते हैं, तब पाँच मन्त्रों में सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु और परमेश्वर का नाम लेकर आहुति देते हैं। हम कहते हैं ये सब व्रती हैं। सूर्य व्रती है, चन्द्र व्रती है, अग्नि व्रती है, वायु व्रती है, परमेश्वर सबसे बड़ा व्रती है, सबसे बड़ा नियम चलाने वाला है। **अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।** अग्नि को कहा है कि अग्ने, तू व्रतपति है। तेरे अन्दर व्यवस्था है, नियम है, मर्यादा है। मुझे भी व्रती बनना है, मैं भी व्रत ले रहा हूँ, मैं भी तेरी तरह व्रती बन जाऊँगा, इसीलिए मैं तुझे बता रहा हूँ, तुझे साक्षी बना रहा हूँ, तेरा सहयोग चाहता हूँ, तेरा परामर्श चाहता हूँ, तेरा साथ चाहता हूँ। **तन्मे राध्यताम्**। **इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि**- और यह मेरा व्रत क्या काम करेगा? अनृतात् सत्यमुपैमि मैं अनृत से सत्य को प्राप्त हो जाऊँगा, सत्य की ओर चला जाऊँगा। तो व्रत का मुख्य प्रयोजन है- मनुष्य को अवनति से उन्नति की ओर ले जाना, निम्नता से उच्चता की ओर ले जाना, दरिद्रता से सम्पन्नता की ओर ले जाना। इसलिए मनुष्य को व्रती होने के लिए कहा गया है। हर मनुष्य को व्रती बनना चाहिए।

इसके लिए एक और सुन्दर पंक्ति आपको याद दिलाऊँ। जातकर्म संस्कार में, किन उपायों से किन वस्तुओं की प्राप्ति होती है, इसकी चर्चा है। वहाँ पर व्रतों का महत्त्व बताते हुए कहा है- **ऋषयः आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तः तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि स्वाहा**। कहता है कि यह जो ऋषि में ऋषित्व आया है, यह कहाँ से आया है, यह उनको कैसे प्राप्त हुआ है? कहता है- **व्रतैः**। उन्होंने व्रतों का पालन किया है, उन्होंने संकल्पों को जीया है, उन्होंने व्रत लिए हैं और उनका आचरण किया है। तो इसलिए कहा, **ऋषयः आयुष्मन्तः**- ऋषियों की जो आयु है, ऋषियों का जो ऋषित्व है वह कैसे बना, कैसे बढ़ा? **व्रतैः आयुष्मन्तः** उन्होंने जीवन में व्रतों का पालन किया, उन्होंने व्रतों को धारण किया, उन्होंने श्रेष्ठ संकल्प लिए। वैसे ही यदि कोई व्यक्ति चाहता है, कुछ करना, तो उससे जुड़ी हुई चीजों का उसे व्रत लेना चाहिए। उस मार्ग से परिचित होने के लिए उसे व्रत का पालन करना चाहिए। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का जीवन व्रतमय होना चाहिये, क्योंकि व्रतमय होने से ही उसके जीवन की सार्थकता होती है, यह इस मन्त्र का अभिप्राय है।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के मन्त्री गुरुकुल पूठ, हापुड़ के संचालक, गुरुकुल ततारपुर के पूर्व प्रधानाचार्य एवं कन्या गुरुकुल दबथला के अध्यक्ष **स्वामी धर्मेश्वरानन्द सरस्वती** का दि. २३ अक्टूबर २०१९ को आकस्मिक हृदयाघात के कारण निधन हो गया। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन आर्यसिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में लगाया। आपके कार्यों के लिये आर्यजगत् सदैव स्मरण रखेगा। गुरुकुल ऋषि उद्यान में आचार्य घनश्याम द्वारा दि. २४ अक्टूबर २०१९ को प्रातः यज्ञोपरान्त स्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डाला गया एवं उपस्थित सभी आर्यजनों ने स्वामी जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

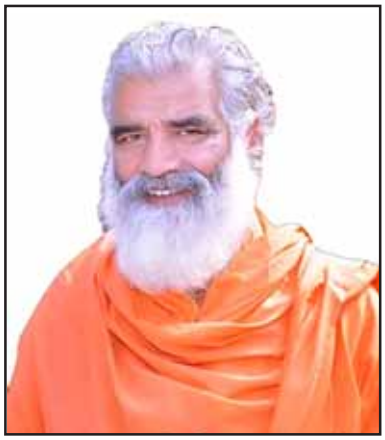

परोपकारी परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

आर्यपुरुष चौधरी छोटूराम जी के कुछ प्रेरक प्रसंग- २४ नवम्बर को दीनबन्धु लोकप्रिय आर्यनेता चौधरी छोटूराम जी के जन्मदिवस पर, इस बार मैं रोहतक के समारोह में भाग लेना चाहता था, परन्तु उसी दिन अपनी कई पुस्तकों के विमोचन समारोह में मुझे दिल्ली जाना है। कुछ विशेष घटनायें तथा चौधरी जी के सम्बन्ध में अपने संस्मरण देते हुए एक लम्बा लेख देना था, परन्तु बहुत व्यस्त होने से इसी स्तम्भ में अपने श्रद्धासुमन संक्षेप से भेंट करता हूँ।

मैं तीसरी कक्षा में अथवा चौथी कक्षा में पढ़ता था। हमारे ग्राम में आर्यसमाज के कारण हिन्दुओं में अन्य ग्रामों की अपेक्षा विशेष जाग्रति थी। मैं तब १०-११ वर्ष की आयु में दैनिक समाचार-पत्र तथा आर्यसामाजिक पत्र जो ग्राम में आते थे उनको बड़े ध्यान से व सुरुचि से पढ़ता था। चौधरी छोटूराम जी की चर्चा दैनिक पत्रों में रहती ही थी। हमारे ग्राम के आर्यों में चौधरी छोटूराम जी के प्रति विरोध का कोई भाव नहीं था। आर्यसमाजी जानते थे कि चौधरी छोटूराम हमारा आर्यसमाजी नेता है और स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का पक्का शिष्य है।

हमारे गाँव से तीन मील की दूरी पर जमींदारा पार्टी के विशाल सम्मेलन में चौधरी जी को आना था। वहाँ के मिडिल स्कूल के ग्राउण्ड में उनका भाषण सुनने दूर-दूर से किसान आ रहे थे। उसी स्कूल में मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्री यश जी पढ़ते थे। हमारे पिताजी ने मेरे भाई यश जी से कहा, ''हमारे बड़े स्वामी जी का शिष्य आर्यलीडर चौधरी छोटूराम आ रहा है। आज तू छोटे भाई को भी वहाँ ले जा। अपने आर्यसमाजी लीडर के यह भी दर्शन कर आयेगा।'' मैंने यश जी के साथ जीवन में पहली बार इतनी भीड़ को देखा और इतने बड़े समारोह में भाग लिया तथा देशप्रसिद्ध एक राजनेता के दर्शन किये।

चौधरी जी क्या बोले तब १०-११ वर्ष की आयु में कुछ न समझ सका, परन्तु आर्यसमाज के गहरे संस्कारों के कारण इतना गौरव व सन्तोष था कि एक बड़े नेता के दर्शन किये हैं। उनकी पगड़ी, छोटा कद और आकृति जो उस समय देखी आज पर्यन्त उनका नाम सुनते ही मेरे नयनों के सामने घूम जाते हैं। वह लाला लाजपतराय जी सदृश भाषण देते हुये हाथ उठाकर उँगली ऊपर करके बोलते थे। यह मैं भूल नहीं पाता।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के मुख से सुना था- पं. रघुवीरसिंह जी शास्त्री ने उनकी जीवनी में स्वामी जी के सन् १९५२ के एक ऐतिहासिक लेख के अंश देते हुये उस लेख में स्वामीजी का यह वाक्य भी दिया है कि वे आगे कभी चौधरी जी के आर्यत्व की विशेष घटनायें बतायेंगे। एक महत्त्वपूर्ण घटना आपने वहाँ अधूरी दी है। मुझे महाराज ने एक दिन पूरी सुनाई थी जो मैं बताता रहा हूँ। आज यहाँ देता हूँ। चौधरी जी ने स्वामी जी को पत्र लिखा (और मिले भी) कि आर्य प्रतिनिधि सभा ने उनके किसी बिल की निन्दा में, उनको सुने बिना ही एक प्रस्ताव पारित करके कृषकों के आर्यत्व का अपमान किया है। क्या हम आर्य नहीं? हमारा दृष्टिकोण सुने बिना प्रस्ताव पास कर दिया है।

स्वामी जी ने कहा, ''मुझे तो सभा द्वारा पारित ऐसे किसी प्रस्ताव की जानकारी नहीं है। मैं पूरा पता करके आपको सूचित करूँगा।'' जाँच करने पर स्वामी जी को पता चला कि ऐसा कोई प्रस्ताव सभा ने पारित किया ही नहीं। चौधरी छोटूराम यह माँग करते रहे कि सभा हमसे क्षमा माँगे। **अब जब पता चला कि यह दुष्प्रचार था, झूठ था तो आर्यपुरुष चौधरी छोटूराम जी ने सार्वजनिक रूप में सभा से क्षमा-याचना की। उनके आर्यत्व का इससे बड़ा क्या प्रमाण हो सकता है? उनकी सत्यनिष्ठा व चरित्र पर सब आर्यों को अभिमान होना चाहिये।**

यह भ्रम फैला कैसे? बात वास्तव में यह थी कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने एक ऐसा प्रस्ताव पारित किया था। प्रेस में 'प्रादेशिक' शब्द छूट गया। श्री स्वामीजी महाराज ने अपनी कुटिया के बरामदे में अपने तख्तपोश

पर बैठे मुझे यह जानकारी दी थी।

चौधरी जी की प्रखर देशभक्ति- एक बार मैंने महाराज से प्रश्न किया कि काँग्रेसी चौधरी छोटूराम को देशभक्त नहीं सरकार-भक्त बताते हैं। स्वामी जी ने कहा, ''एक बार पंजाब सरकार की ओर से एक योग्य व्यक्ति को कृषि विषय में कुछ खोज व प्रशिक्षण के लिये अमेरिका भेजा जाना था। पंजाब का अंग्रेज राज्यपाल एक गोरे अंग्रेज अधिकारी को वहाँ भेज रहा था। गवर्नर के अधिकारों पर कोई अंकुश नहीं था। चौधरी छोटूराम अड़ गये कि ऐसा नहीं हो सकता। किसी भारतीय को ही भेजना न्याय व तर्कसंगत है। गवर्नर को चौधरी जी की बात माननी पड़ी।''

यह घटना सुनाकर कहा, ''**अब आप निर्णय कर लें कि वह देशभक्त थे अथवा गोरे अंग्रेजों के भक्त थे। यह घटना सुनकर मेरा समाधान हो गया।**''

जब चौधरी जी दीनानगर पधारे- आप एक बार दीनानगर जमींदारा पार्टी के सम्मेलन में पधारे। दूर-दूर से कृषक विशेष रूप से सुपठित युवक उन्हें सुनने वहाँ पहुँचे। मन्त्री जब ऐसे कहीं जाते हैं तो वहाँ के अपने विशेष जानकारों व पार्टी के प्रतिष्ठित लोगों को अपने आगमन की पूर्व सूचना भिजवाते हैं। चौधरी जी ने ऐसा कोई पत्र स्वामी जी महाराज को तो नहीं भेजा था। **इसी में उनकी गरिमा थी, परन्तु संयोग से उस दिन स्वामी जी महाराज भी दीनानगर थे।**

सभा समाप्त होने पर चौधरी जी ने अपने अगले प्रोग्राम पर जाना था। सरकारी कर्मचारी उसके लिये चौकस हो गये, परन्तु चौधरी जी ने कहा, ''मैं पहले स्वामी श्री स्वतन्त्रानन्द जी के दर्शन करने जाऊँगा।'' यह सुनते ही श्रोताओं पर विशेषरूप से युवा वर्ग पर गहरा प्रभाव पड़ा। दूर-दूर से वहाँ आये युवक जो आज तक कभी मठ में नहीं आये थे भारी संख्या में दयानन्द मठ में चौधरी जी के पीछे-पीछे पहुँच गये। संयोग से स्वामी जी के युवा विद्वान् शिष्य इतिहासकेसरी पं. निरञ्जनदेव उस दिन दीनानगर में ही थे। **आपने अपने नयनों से उस समय की एक-एक क्रिया की फिल्म बना ली। उनके मुख से जो कुछ सुना, आगे दिया जाता है।**

स्वामी जी की कुटिया का द्वार ऊँचा नहीं। व्यक्ति को सिर झुकाकर उसमें प्रवेश करना होता है। चौधरी जी कद के भले ही छोटे थे उनको भी प्रविष्ट होते हुये झुकना पड़ा। इस पर महाराज बड़े प्यार से बोले, ''**चौधरी जी! फ़कीर की कुटिया है। द्वार छोटा है। थोड़ा झुकना पड़ता है।**''

भीतर जाने से पहले चौधरी जी अपने बूट के तस्मे आप ही खोलने लगे। सरकारी कर्मचारी साथ थे। उनमें से किसी को इस कार्य के लिये नहीं बुलाया। दूर खड़े एक कर्मचारी ने उन्हें झुककर ऐसा करते देखा तो वह सहायता के लिये भागकर आया। यह थी उस युग के नेताओं की विशेषता।

जिस फ़कीर के दर्शन करने वज़ीर आया

उस समय के दो प्रसंग लिखकर इस विषय को समाप्त करते हैं, शेष फिर कभी। चौधरी जी ने विदा होने की अनुमति लेते हुये महाराज से पूछा, मेरे लिये कोई आज्ञा?

महामुनि स्वतन्त्रानन्द बोले, ''इन छोटे-बड़े दुकानदारों, व्यापारियों के भले के लिये भी कुछ कीजिये।'' चौधरी जी बोले, ''आप आज्ञा दें।''

महाराज बोले, ''यह सवेरे-सवेरे अंधेरे में आकर दुकानें खोल लेते हैं, तब इनके बच्चे सोये होते हैं। यह न सैर करते हैं। न कोई व्यायाम करते हैं। दुकानों के खुलने का और बन्द होने का कोई समय निश्चित कीजिये। रात्रि समय जब ये घर जाते हैं तब भी इनके छोटे-छोटे बच्चे सोये होते हैं। उनको कौन संस्कार देगा?''

तत्काल दीनानगर से चौधरी छोटूराम ने बाज़ार खुलने व बन्द होने के समय की घोषणा कर दी।

विदा होकर जब चौधरी जी मठ से निकले उस समय महाराज ने यज्ञशाला के पास युवकों की भीड़ को कहा, ''अच्छा! आप यहाँ वजीर को निकट से जी भरकर देखने आये थे?''

तपाक से बड़ी श्रद्धा से उनमें से एक ने महामुनि पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी से कहा, ''**नहीं! हम उस फ़कीर के दर्शन करने यहाँ आये हैं जिस फ़कीर के**

दर्शनार्थ इतना बड़ा वज़ीर आया।''

यह घटना असाधारण है। इसी पर मेरे एक लेख को पढ़कर पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द जी मुग्ध हो गये थे। वह भी तब मठ ही में थे।

क्रान्तिकारियों के सम्राट् वीर सावरकर जी- राहुल गाँधी तथा काँग्रेस के कारण देश के लिये तिल-तिल जलने वाले वीर सावरकर जी को कुछ नेताओं द्वारा सत्तालोलुप गाली देने की होड़ सी लगी है। और तो और ओवैसी, जिसकी पार्टी की भारतघाती एक पुस्तक में देश की हत्या करवाने वाले जिन्नाह को कायदे आज़म और भारत के शत्रु- लहू की नदियाँ बहाने की सरदार पटेल जी को धमकी देने (दिल्ली आकर) वाले कासिम रिज़वी को 'कायदे मिल्लत' लिखा गया- ऐसा क्रूर व्यक्ति भी राहुल से प्रेरणा पाकर वीर सावरकर को लच्छेदार गालियाँ देते हुये वीर भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के नाम और काम की माला फेरता है। अंग्रेजी भाषा में इसी को कहते हैं Devil quotes the Bible. ''इस समय राहुल और ओवैसी का D.N.A. एक ही है'' ये शब्द मैंने बाज़ार में एक युवक के मुख से सुन लिये।

ऐसे वाकशूरों को पता होना चाहिये कि वीर सावरकर के ऐतिहासिक ग्रन्थ Our First War of Independence **को बड़े लम्बे समय के पश्चात् वीर भगतसिंह ने ही छपवाया था।** जिस अमर बलिदानी सावरकर के गीत डॉ. राधाकृष्णन् जी जैसी विश्वविभूति ने गाये, जिस सावरकर को परमपराक्रमी नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस ने नमन किया, जिस सावरकर को वीर परमानन्द, झाँसी, बंगाल के एक-एक क्रान्तिकारी ने (जो कालेपानी में सड़ते रहे) अपना पूज्य व प्रेरणास्रोत माना और कई कम्युनिस्ट लेखकों ने भी जिसे परमप्रतापी शूरवीर माना, उसे मनीष तिवारी सरीखे टिकिटपंथी सांसद आज गाली देते हैं। इनसे **बड़ा देश का अपमान और कौन कर सकता है?**

देश का विघटन काँग्रेस ने करवाया- देश के विभाजन से पूर्व केन्द्र में काँग्रेस ने मुस्लिम लीग को साथ मिलाकर अपने बराबर का बनाकर, लोकतन्त्र की हत्या करके देश विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया। **''हमारी लाशों पर पाकिस्तान बनेगा। ऐसा गाँधी जी व काँग्रेसी नेता गर्ज-गर्जकर कहा करते थे। पाकिस्तान पंजाब-बंगाल के अभागे देशप्रेमी, भोले लोगों के शवों पर बना। इन्होंने आगे आकर अड़ने-लड़ने का साहस ही न जुटाया।''**

जिन्नाह से इतनी यारी- महात्मा गाँधी जिन्नाह के गले में बाँह डालकर बड़े प्यार से, बड़ी मस्ती से बातें करके फिल्म जाने वाले युवकों की शैली में फोटो खिंचवाते हैं ओर देश की हत्या का दोष वीर सावरकर पर थोपा जा रहा है। यह फोटो एक प्रख्यात इतिहासकार के एक ग्रन्थ में छपा मिलता है।

क्या कभी किसी लोकप्रिय बलिदानी हिन्दू नेता के साथ गाँधी जी ने ऐसे फोटो खिंचवाया?

हिन्दुओं पर बम वर्षा- ये गालियाँ देकर इन लोगों ने काँग्रेस के एक कुकृत्य की याद दिलवा दी। जब बंगाल में जिन्नाह की मुस्लिम लीगी सरकार ने Direct Action नाम से कोलकाता आदि कई नगरों में हिन्दुओं का नरसंहार किया, तब जवाहरलाल नेहरू दिल्ली में अन्तरिम सरकार के प्रधानमन्त्री थे। इस नरसंहार की बिहार में प्रतिक्रिया हुई। नेहरू जी ने आव देखा न ताव बिहार के हिन्दुओं पर बमबारी करवा दी। मुझे वे दिन खूब याद हैं।

कश्मीर से लाखों पण्डित निष्कासित किये गये तब काँग्रेस को बमबारी की अपनी कला कैसे भूल गई?

डॉ. रामवीर जी की प्रतिक्रिया- अक्टूबर द्वितीय के अंक में पृष्ठ १५ पर माननीय डॉ. रामवीर जी की 'प्रतिक्रिया' शीर्षक की कविता मैंने पढ़ी। अनेक बन्धु तथा स्वयं डॉ. रामवीर जी जानते हैं कि मैं डॉ. रामवीर जी की प्रतिभा, पाण्डित्य और मौलिकता का fan ही नहीं परम प्रशंसक हूँ, परन्तु उनसे प्रसन्न नहीं रहता। इसका कारण यह है कि वह अपनी प्रतिभा का लाभ देश व समाज को नहीं पहुँचाते। मेरी सुनते ही नहीं। श्री डॉ. धर्मवीर जी और डॉ. सुरेन्द्र जी उन पर दबाव बनाकर सेवा लेने के दो अधिकारी विद्वान् थे। एक हमसे छिन गये। वह कह कहकर हार मान बैठे और डॉ. सुरेन्द्र जी उनके घर जाकर धरना देवें तो कुछ बात बन सकती है। वह बिना

प्रयास किये हार माने बैठे हैं। अब मैं किसका द्वार खटखटाऊँ? मैं दो-चार बार डॉ. रामवीर की रचनायें पढ़कर उनकी विलक्षणता तथा विद्वत्ता को जानकर गौरवान्वित होकर गद्‌गद हो गया।

धर्मवीर जी ने उनकी प्रतिभा तथा उन्हें ईश्वर की देन पर बहुत कुछ बताया तो मैंने उन्हें गद्य व पद्य में एक-एक दो-दो ग्रन्थ देने, पत्रों में नियमित कुछ न कुछ देने के लिये विनम्र विनती की। महाकवि शङ्कर के पश्चात् यही ऐसा आर्य रत्न है जो साहित्य के इतिहास में आर्यसमाज को एक अद्वितीय और निर्विवाद यश दिलवा सकता है, परन्तु इनसे कार्य ले कौन?

अपनी 'प्रतिक्रिया' रचना में आपने मेरी सेवाओं का जो मूल्याङ्कन किया है उसके लिये मैं उनके प्रति अपने आभार तथा उद्‌गार कैसे व्यक्त करूँ? मुझे क्या पता था कि पूरी कविता में मेरी सेवाओं का इस युग के पं. नाथूराम शङ्कर ने मूल्याङ्कन किया है। मैंने उनका fan होने के कारण इस रचना को पढ़ना आरम्भ किया तो दंग रह गया। ऐसे दिल खोलकर लेखनी चला दी। इसे पढ़कर पूजनीय पं. चमूपति जी की लौह लेखनी से लिखे गये एक उर्दू के वाक्य को हिन्दी का रूप देकर अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लोभ का संवरण नहीं किया जा सकता-

''मैं गीत पे वारी, दिल जीत पे वारी, इस प्रीत पे वारी।''

पूर्वजों से, गुणियों से और आर्यसमाज से बाहर के भी कई मूर्धन्य साहित्यकारों से कई बार ऐसा प्यार, सत्कार तथा प्रोत्साहन पाकर मैंने स्वयं को बड़ा भाग्यशाली माना। यह ईश्वर की कृपा-वृष्टि ही तो है। माननीय रामवीर जी की प्रतिक्रिया का प्रसाद पाकर सन् १९५६ में दीपावली के थोड़ा बाद पूज्य साहित्यपिता पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय का एक प्यार भरा पोस्टकार्ड प्राप्त हुआ। उसका पहला ही वाक्य था, **''मैं तुम्हारा लेख पढ़कर फड़क उठा।'' वे कितने फड़के यह तो बता पाना कठिन है, परन्तु इस वाक्य का स्मरण करके मैं तो ६३ वर्ष से फड़क उठता हूँ।**

ठीक इसी प्रकार रामवीर जी की इस रचना ने मेरे मन व मस्तिष्क पर गहरी व अमिट छाप छेड़ी है। मैंने १२ अक्टूबर २०१९ को **'जीवन में क्या खोया? क्या पाया?' एक प्रेरणाप्रद पुस्तक लिखनी आरम्भ की है।** उसमें उपाध्याय जी के पत्र का उल्लेख तो कर ही चुका हूँ। एक पूरे पृष्ठ पर स्थूल अक्षरों में केवल यह कविता देकर उसके आगे ऐसे ही दिल खोलकर अपने उद्‌गार दूँगा जिससे पाठकों को कुछ बौद्धिक व आत्मिक भोजन प्राप्त हो सके।

बड़े से बड़े क्रान्तिकारी का अपमान- अब समय आ गया है कि देशवासियों को यह बताया जावे कि काँग्रेस ने बड़े से बड़े क्रान्तिकारी का घोर अपमान किया। इतिहास को घुटन से बचाने के लिये देशप्रेमी इतिहासज्ञ कब तक मौन रहेंगे। देशवासी आगे की ढाई पंक्तियों को काँग्रेस का प्रसाद तथा इतिहास का निचोड़ मानकर सुरक्षित कर लें। ये शब्द किसके के हैं? यह राहुल, सोनिया जी, देवी प्रियङ्का जी ही बतायें। वे बताने से कतरायेंगे तो हम किसलिये बैठे हैं। अवश्य बतायेंगे।

''अभी उस दिन केन्द्र की विधानसभा में कुछ हिन्दू नामधारी व्यक्तियों ने बम फेंका था।...आजादी के नाम पर बम फेंकनेवालों ने देश की आजादी के काम को नुकसान पहुँचाया था।''

ये दो हिन्दू कौन थे बम फेंकने वाले? सब जानते हैं बलिदानी दत्त और भगतसिंह शहीद। उनकी निन्दा से काँग्रेस न चूकी।

आर्यसमाज के शुभचिन्तक सोचें- काशी शास्त्रार्थ शताब्दी का कर्मकाण्ड पूरा हो गया। शास्त्रार्थ में ऋषि की विजय के नये-नये प्रमाण एक बड़े व्यक्ति ने चलभाष पर पूछे। मैंने देश-विदेश की नवीनतम खोज का सार उन्हें बता दिया तथापि किसी भी लेख लिखने वाले ने, किसी भी बाबाजी ने और किसी भी नेता जी ने कोई पठनीय सामग्री न दी। ज्वलन्त जी नेताओं में नहीं। उनका लेख अब मिला है। अवश्य पढ़ूँगा।

(१) यशस्वी इतिहासकार ईश्वरीप्रसाद के एक लेख को नवयुग की आहट में मैंने उद्धृत किया है। ऋषि की सिंहगर्जना, उनका तब काशी शास्त्रार्थ, भरी सभा में भाषण क्या था बम के धमाके सरीखा था। हड़कम्प मचा दिया। उस लम्बे लेख का सब अता-पता उसमें दिया है।

(२) जब सभायें नहीं थीं, संस्थायें नहीं थीं। मात्र ५०

समाजें थीं। अमेरिका में छपा, पूरे देश में वेद से मूर्त्तिपूजा का कोई पण्डित प्रमाण न ला सका। काशी के भगवानों का अवमूल्यन हो गया। राहुल जी ने यह दस्तावेज मुझे खोजकर दिया। मैंने छपवा दिया। कोई सभा-संस्था हमारी पुस्तक का, श्रम का लाभ न प्राप्त कर सकी।

(३) जर्मनी, इंग्लैण्ड से भी ऐसे प्रमाण खोजकर पुस्तकों में दिये। देश के एक मूर्धन्य संस्कृतज्ञ और काशी से पढ़े हुये एक शिरोमणि विद्वान् श्री घनश्याम गोस्वामी तब शास्त्रार्थ में उपस्थित नहीं थे। जब शास्त्रार्थ का देशभर में शोर मच रहा था। तिलकधारी यह कह रहे थे कि स्वामी दयानन्द शास्त्रार्थ में हारा। यह सुनकर घनश्याम गोस्वामी काशी जा पहुँचे। सीधे बाल- शास्त्री जी से मिले और पूछा, ''आप यह सच-सच बतायें कि आप जीते या स्वामी दयानन्द शास्त्रार्थ में विजयी रहा?''

पं. बालशास्त्री ने गोस्वामी घनश्याम मुलतान निवासी से कहा था, ''**हम कौन जो शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द को पराजित करने वाले! हम सांसारिक लोग अर्थ के दास, झंझटों में फँसे लोग, दयानन्द बाल ब्रह्मचारी, वीतराग, वेद और ईश्वर के लिये समर्पित सत्यनिष्ठ। उसके सामने कौन टिक सकता है?**''

मुझसे पूछा गया कि यह कहाँ लिखा है। मैंने कहा प्रायः सब पुराने जीवन-चरित्रों में, हमारे वाले (पं. लक्ष्मण जी आर्योपदेशक) सम्पूर्ण जीवन-चरित्र में भी तथा उनके ही शिष्य रहे प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ की पुस्तक ऋषि बोध कथा में। मेरे कहने पर दो बार विजय जी, अजयजी ने छापी। मैने तो स्वामीजी के मुख से ७२ वर्ष पूर्व कादियाँ में ही उनके व्याख्यानों में सुन लिया था। पं. शान्तिप्रकाश जी आदि मुलतान क्षेत्र के सब पुराने आर्य विद्वान् यथा पं. लोकनाथ जी, शरर जी, गोस्वामी जी का प्रमाण अवश्य दिया करते थे।

दुःखी हृदय से यह लिखना पड़ता है कि काशी शास्त्रार्थ पर छपे लेखों को देखकर आर्यसमाज की बौद्धिक कंगाली तथा पिछड़ेपन पर रोना आता है। अपवाद तो अवश्य होता है। इस समय के दो-चार पूज्य गुणी विद्वानों पर हम सबको अभिमान है ही। यह पिछड़ापन मुझे खलता है। प्रभाकर जी, लक्ष्मण जी, धर्मेन्द्र जी, सोमेश पाठक और प्रिय गुरुप्रीत को देखकर मन उत्साह से उछलता है।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

भव्य ऋषि मेला सम्पन्न

कन्हैयालाल आर्य

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी एकमात्र उत्तराधिकारिणी संस्था परोपकारिणी सभा अजमेर की स्थापना २७ फरवरी १८८३ को की थी। महर्षि के बलिदान के स्मरणार्थ प्रत्येक वर्ष ऋषि मेले का आयोजन होता है। इस वर्ष १,२ व ३ नवम्बर २०१९ को भव्य ऋषि मेले का आयोजन हुआ। ऋषि मेले से पूर्व ३१ अक्टूबर २०१९ को एक प्रैस कॉन्फ्रेन्स आयोजित की गई जिसमें सभा के प्रधान डॉ. वेदपाल ने परोपकारिणी सभा की स्थापना एवं उसके उद्देश्यों की चर्चा की। सभा मन्त्री कन्हैयालाल आर्य ने बताया कि यह ऋषि मेला १,२ व ३ नवम्बर को होगा, जिसमें आधुनिक शिक्षा राष्ट्रवाद, मानव निर्माण, नारी शिक्षा, आर्यसमाज की प्रासंगिकता, महर्षि दयानन्द की विश्व को देन, युवाओं की भूमिका तथा गुरुकुलों की आवश्यकतानुसार विभिन्न सम्मेलनों में प्रकाश डाला जायेगा। प्रेस वार्ता में सभा के सदस्य डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी उपस्थित रहे।

प्रत्येक वर्ष के अनुसार इस वर्ष भी ऋषि मेले का अनौपचारिक शुभारम्भ २८ अक्टूबर २०१९ से यजुर्वेद पारायण यज्ञ से प्रारम्भ हुआ। दिनांक १ नवम्बर से ऋषि बलिदान समारोह अपनी परम्परा के अनुसार यज्ञ के उपरान्त ध्वजारोहण द्वारा औपचारिक रूप से प्रारम्भ हुआ। वेद पारायण यज्ञ उत्तराखण्ड से पधारे देश के ख्यातनामा वैदिक विद्वान् आचार्य विनय विद्यालङ्कार के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। यज्ञ के उपरान्त पूर्ण भव्यता के साथ ध्वजारोहण समारोह प्रारम्भ हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में सभा के प्रधान डॉ. वेदपाल जी द्वारा ध्वजारोहण किया गया। डॉ. वेदपाल प्रधान, डॉ. सुरेन्द्र कुमार संरक्षक, कन्हैयालाल आर्य मन्त्री, श्री ओम् मुनि वरिष्ठ उपप्रधान, श्री सुभाष नवाल कोषाध्यक्ष जी आदि को आर्यवीरों द्वारा अपने गणवेश में पूर्ण सैनिक सम्मान के साथ ध्वजारोहण स्थल पर लाया गया। ब्रह्मचारियों की ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना के मन्त्रों, ध्वजगीत गायन से वातावरण अध्यात्ममय हो गया। ध्वजारोहण स्थल पर सभी अतिथिगण, संन्यासीगण, वानप्रस्थीगण, सभा के ट्रस्टी एवं अधिकारीगण सहित कतारबद्ध होकर अनुशासित होकर इस कार्यक्रम की गरिमा बढ़ाई। डॉ. वेदपाल सभा प्रधान ने अपने उद्बोधन में कहा कि इस सभा की स्थापना के समय महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने जो उद्देश्य हमारे सम्मुख रखे थे उन्हें हम उन्हें पूर्ण करने में आपके सहयोग से सदैव प्रयत्नशील रहेंगे।

ध्वजारोहण एवं उद्घाटन सत्र के पश्चात् कार्यक्रम का प्रथम सत्र प्रारम्भ हुआ जिसका विषय था 'आधुनिक शिक्षा और राष्ट्रवाद' जिसकी अध्यक्षता आर्यजगत् के उच्चकोटि के विद्वान् एवं शिक्षाविद् डॉ. सुरेन्द्र कुमार पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार ने की। सत्र के संयोजक सभामन्त्री कन्हैयालाल आर्य रहे। सम्मेलन में श्री भूपेन्द्र सिंह के भजन हुए तथा वैदिक विद्वानों ने अपने प्रवचनों से आर्यजगत् से पधारे श्रद्धालुओं का मार्गदर्शन किया। सायंकालीन सत्र का विषय 'मानव निर्माण और आर्यसमाज' था। इस सम्मेलन में श्री कमलेश अग्निहोत्री वैदिक विद्वान् को श्री मथुराप्रसाद नवाल विद्वत् सम्मान पुरस्कार से सम्मानित किया गया। रात्रिकालीन सत्र का विषय 'नारी और आर्यसमाज' था, जिसकी अध्यक्षता गुरुग्राम से पधारीं डॉ. उषा शर्मा 'उषस' ने की। जिसमें डॉ. सूर्यादेवी, साध्वी उत्तमा यति, सभामन्त्री कन्हैयालाल आर्य का प्रवचन हुआ। इस सम्मेलन में डॉ. उषा शर्मा 'उषस' को कमला देवी नवाल सम्मान से सम्मानित किया गया।

महर्षि दयानन्द बलिदान समारोह के अवसर पर आयोजित ऋषि मेले में विभिन्न प्रदेशों से ऋषिभक्तों का आना जारी रहा। गुजरात, महाराष्ट्र, दिल्ली, केरल, छत्तीसगढ़, बिहार, हरियाणा, पंजाब, जम्मू-कश्मीर आदि प्रदेशों से लोग भारी संख्या में अपने साधनों से ऋषि को श्रद्धाञ्जलि देने उपस्थित हुए। इस अवसर पर डॉ. पुनीत शास्त्री मेरठ को श्रीमती सुमनलता आर्य कार्यकर्त्ता पुरस्कार से सम्मानित किया।

इस अवसर पर एम.डी.एच. के चेयरमैन महाशय

धर्मपाल जी, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री धर्मपाल आर्य, मन्त्री श्री विनय आर्य सहित पधारे **सभा के आग्रह पर महाशय जी ने सभा का संरक्षक पद स्वीकार करने की सहमति प्रदान की।** सबसे पूर्व सभा प्रधान डॉ. वेदपाल जी ने परोपकारिणी सभा के विषय में पूर्ण जानकारी सभी सम्मानित सदस्यों एवं आर्य जनता को दी। इस अवसर पर डॉ. विनय विद्यालङ्कार, श्री विनय आर्य, डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार ने सभा को सम्बोधित किया। महाशय धर्मपाल जी ने ऋषि उद्यान में चल रहे सम्मेलन में आर्यों का आह्वान किया कि वे पैसों के पीछे न भागें। उन्होंने कहा कि पैसों का सुख क्षण भर का है जबकि सेवा का सुख जीवनोपरान्त है।

सभा की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए महाशय जी ने स्थिरनिधि हेतु ३५ लाख रुपये की राशि प्रदान करने की घोषणा की। श्री प्रेम अरोड़ा ने राशि-वृद्धि हेतु अपना योगदान एक लाख देने की घोषणा के साथ ही आर्यबन्धुओं ने भी अपने योगदान की घोषणाएँ कीं। इसका विवरण निम्नवत् है-

१. पद्मभूषण महाशय धर्मपाल जी, दिल्ली ३५ लाख रु.
२. आचार्य देवव्रत जी महामहिम राज्यपाल गुजरात ५ लाख रु.
३. महात्मा वेदपाल पानीपत, (हरियाणा) १ लाख रु.
४. सभामन्त्री कन्हैयालाल आर्य के पुत्र श्री राजेश, श्री दिनेश १ लाख रु.
५. स्वामी ब्रह्मानन्द जी हिसार (हरियाणा) १ लाख रु.-प्राप्त हुये।
६. सभा संयुक्त मन्त्री डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा जी के पुत्र श्री मृत्युञ्जय शर्मा द्वारा १ लाख रु.
७. श्री जयसिंह जी पालड़ी जोधपुर १ लाख रु.
८. श्रीमती मृदुला, मालती चोटानी, गुरुग्राम (हरियाणा) १ लाख रु.
९. श्री देशबन्धु आर्य वल्लभगढ़ हरियाणा १.५१ लाख रु.
१०. श्री जयकिशन जी गहलोत जोधपुर (राज) १ लाख रु.
११. श्री ओमप्रकाश मस्करा कलकत्ता (पं. बंगाल) १ लाख रु.
१२. माता श्रीमती प्रेमवती जी भिवानी (हरियाणा) १ लाख रु. - प्राप्त हुये।
१३. सभा कोषाध्यक्ष श्री सुभाष नवाल, अजमेर एवं श्री ओमप्रकाश नवाल (ब्यावर) १ लाख रु. - प्राप्त हुये।
१४. श्री चन्द्रकान्त जी मेरठ (उत्तरप्रदेश) १ लाख रु.
१५. श्री राधाकृष्ण जी पंचकुला (हरियाणा) १ लाख रु. - प्राप्त हुये।
१६. श्री राजकुमार जी आर्य प्रधान आर्यसमाज मुलतान नगर, देहली १ लाख रु.
१७. श्री सूरजभान जी हुड्डा रोहतक, (हरि.) १ लाख रु.
१८. श्री राजेन्द्र गुप्ता जी पटेल नगर, गुरुग्राम (हरियाणा) १ लाख रु.
१९. श्री शत्रुघ्न गुप्ता, (उपप्रधान सभा) रांची १ लाख रु. - प्राप्त हुये
२०. वेद प्रचार मण्डल पानीपत ५१ हजार रु. - प्राप्त हुये।

इस अवसर पर कुछ और सम्मेलनों का भी आयोजन किया गया जिसमें 'आर्यसमाज की प्रासंगिकता' विषय पर विद्वानों ने अपने प्रवचन दिये। 'महर्षि दयानन्द की विश्व को देन' विषय पर कार्यक्रम की अध्यक्षता आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के प्रधान श्री रामपाल जी ने की। वेद प्रचार सम्मेलन में श्री विनय आर्य, डॉ. विनय विद्यालङ्कार, डॉ. सुरेन्द्र कुमार, डॉ. वेदपाल विद्वानों ने अपने प्रवचन दिये।

रविवार को समापन दिवस का कार्यक्रम आयोजित किया गया। यज्ञ के ब्रह्मा डॉ. विनय विद्यालङ्कार जी ने यजुर्वेद पारायण की पूर्णाहुति कराई। इस अवसर पर यज्ञ के ब्रह्मा डॉ. विनय विद्यालङ्कार जी को 'दीपचन्द धर्मार्थ न्यास पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

समाज सुधार में युवाओं की भूमिका नामक विषय पर आचार्य विजयपाल उपप्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली की अध्यक्षता में हुआ। इसमें प्रवचन रामनिवास जी गुणग्राहक एवं गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने दिये। रात्रिकालीन सभा में वर्तमान में गुरुकुलों की प्रासंगिकता की अध्यक्षता हिसार से पधारे स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने की।

इस कार्यक्रम में डॉ. महावीर अग्रवाल पूर्व कुलपति उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय को 'डॉ. प्रियव्रतदास

वेद-वेदांग पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। श्री गगेन्द्र सिंह जी को 'विश्वकीर्ति आर्य युवक कार्यकर्त्ता पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। श्री अंकित प्रभाकर जी को 'स्वामी आशुतोष आर्ष अध्यापक पुरस्कार', ब्रह्मचारी प्रताप आर्य को भी 'बिरदीचन्द ईनाणी आर्ष छात्रवृत्ति' प्रदान की गई। ब्रह्मचारी पवनदेव आर्य को 'श्रीमती सुगणी देवी ईनाणी आर्ष छात्रवृत्ति पुरस्कार' से सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त आचार्य सहदेव जी को 'डॉ. मुमुक्षु आर्य आर्ष पाठविधि पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। रविवार रात्रि धन्यवाद व समापन सत्र का आयोजन किया गया।

भजनोपदेशकों के रूप में आर्यजगत् के प्रख्यात भजनोपदेशक श्री सत्यपाल पथिक, श्री भूपेन्द्र सिंह आर्य, श्री रुबेल सिंह जी ने अपने भजनों के माध्यम से आर्यजगत् को सम्बोधित किया।

समानान्तर मंच से वेद गोष्ठी का आयोजन सरस्वती भवन में आयोजित हुई। जिसमें देश के ख्यातनाम विद्वानों ने पत्रवाचन कर अपने विचारों से जनसमूह को अवगत कराया। वेद गोष्ठी का विषय 'वेद वर्णित ईश्वर स्वरूप एवं नाम' (ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव) इस विषय पर गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. सूर्यादेवी, पं. रामस्वरूप रक्षक, धर्मवीर विद्यावारिधि ने की। इसके अतिरिक्त डॉ. महावीर मीमांसक, डॉ. महावीर अग्रवाल, श्री कमलेश चौकसी, आचार्य विमल एडवोकेट आदि ने भी भाग लिया। लगभग ३० शोधार्थियों ने पत्र-वाचन में भाग लिया।

इस अवसर पर दो पुस्तकों का विमोचन हुआ पहली पुस्तक वैदिक विदुषी श्रीमती उषा शर्मा 'उषस' द्वारा लिखित है। दूसरी पुस्तक सभामन्त्री कन्हैयालाल आर्य द्वारा लिखित 'मैं कौन' है।

रविवार रात्रि समापन एवं धन्यवाद सत्र में सभी का धन्यवाद किया गया। धन्यवाद के साथ ऋषि मेले के कार्यक्रम सम्पन्न हुये।

- मन्त्री, परोपकारिणी सभा

---

१. कुल्लियाते आर्य मुसाफिर (पं. लेखराम ग्रन्थ संग्रह)- दो भाग

लेखक- पण्डित लेखराम

सम्पादक- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब

मूल्य- रुपये ~~९००~~/- **छूट पर**- ६००/-

२. महर्षि दयानन्द का पत्र-व्यवहार (दो भाग में)

मूल्य - रुपये ~~८००~~/- **छूट पर** - ५००/-

३. अष्टाध्यायी भाष्य- ३ भाग (१ सैट)

भाष्यकार- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- रुपये ~~५००~~/- **छूट पर**- ३५०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

१६ नवम्बर काशी शास्त्रार्थ की १५० स्वर्ण जयन्ती पर

काशी के छल-बल कोलाहल में कोतवाल की मतिमान पहल

देवनारायण भारद्वाज

इस वर्ष २०१९ में दो शतोत्तर स्वर्ण जयन्ती के अवसर आ रहे हैं- एक महर्षि दयानन्द के काशी-शास्त्रार्थ का, ओर दूसरा महात्मा गाँधी के जन्म का। राष्ट्रपिता के इस आयोजन का शोर देश में बहुत पूर्व से ही समाचार-पत्र व अन्य माध्यमों में छाने लगा है, जबकि राष्ट्रपितामह महर्षि दयानन्द के अवदान के इस आयोजन की चर्चा मात्र आर्य पत्र-पत्रिकाओं तक सीमित है। आर्य पत्रिकाओं के बड़े विशेषांक व समारोह आयोजित हो सकते हैं, जिनमें महर्षि की जीवन-झाँकी और तपश्चर्या की धूम होगी। उस समय के काशी के कोतवाल पं. रघुनाथ प्रसाद का साहसिक सहयोग शिलांकन तुल्य ही यशोगान के सर्वाधिक अनुकूल है-अस्तु यह रचना उन्हीं को समर्पित है।

विश्व प्रसिद्ध तीर्थनगरी काशी मंगलवार १६ नवम्बर १८६९ को शास्त्रार्थ-समर के कोलाहल-छल-बल से मण्डित थी। इस वर्ष २०१९ में शनिवार को इस हल-चल की शतोत्तर स्वर्ण जयन्ती है। पौराणिक जगत् में ये दोनों दिवस वज्राांगबली हनुमान की उपासना के लिये मान्य हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के संग्राम विजय और प्राण-रक्षा के लिए जैसे हनुमान जी की महिमा है वैसे ही काशी के शास्त्रार्थ-समर में वैदिक दिग्विजयार्थ वेद-मार्तण्ड देव दयानन्द की प्राणरक्षा में निमित्त तत्समय उपस्थित कोतवाल पं. रघुनाथ प्रसाद की महत्ता है। कोतवाल का यह कार्य बहुत ही सराहनीय रहा है। इसीलिये पं. घासीराम ने महाराजश्री की जीवनी में लिखा है-''समस्त भारतवासी ही नहीं वरन् संसार के सब मनुष्य सदा के लिये इस कर्त्तव्यनिष्ठ, न्यायाशील कोतवाल के आभारी रहेंगे। वह स्वयं मूर्तिपूजक था, परन्तु उसने एक क्षण के लिये भी पक्षपात नहीं किया। यदि वह अणुमात्र भी अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गया होता तो बड़ा अनिष्ट होता। अत: जब तक दयानन्द का नाम संसार में रहेगा, तब तक रघुनाथ प्रसाद कोतवाल का नाम भी गौरव और प्रतिष्ठा के साथ असीम संसार में अमर रहेगा।'' इन पावन पंक्तियों को मेरठ के वयोवृद्ध लाला लक्ष्मीनारायण ने स्वलिखित ग्रन्थ 'तप:पूत संन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती' में भी उद्धृत किया है।

चौदह वर्ष के किशोर मूलशंकर के महादेव के दर्शनार्थ महाशिवरात्रि-जागरण में पिता-पुजारी-भक्त सभी के निद्रामग्न हो जाने पर किशोर ने शिव-पिण्डी पर चूहों के उत्पात का अवलोकन किया तो अपने उपवास को तोड़ दिया और पिता से काशी जाकर विद्याध्ययन का अनुरोध किया। अमान्य होने पर उसने अपने जन्मस्थल टंकारा का परित्याग कर दिया। ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य और दण्डी संन्यासी की दीक्षा से स्वामी दयानन्द सरस्वती हो गया। विश्वनाथ की नगरी पहुँचने से पहले वह पहुँच गया द्वारिकानाथ की नगरी मथुरा, गुरुवर्य विरजानन्द सरस्वती की शरण में। यहाँ उसे जो वेद-व्याकरण दीक्षा मिली, उसके आगे सभी दीक्षायें निराधार हो गयीं। प्रतिमा-पाषाण पूजा की निरर्थकता सिद्ध हो गयी। गुरु-दक्षिणा में गुरु का आदेश मानकर वह सम्पूर्ण देश में भ्रमण करके पाखण्ड के खण्डन में प्रवृत्त हो गया। यत्र-तत्र भ्रमण करते हुए उसने काशी की सात बार यात्रायें कीं और हर बार कोई न कोई चमत्कार घटित होता रहा। इसी क्रम में दयानन्द २२ अक्टूबर १८६९ को वहाँ पहुँचे।

उनके यहाँ आगमन का समाचार जंगल की आग की भाँति सर्वत्र फैल गया। पं. क्षितीश वेदालङ्कार ने 'दिव्य दयानन्द' ग्रन्थ में आगे का विवरण यों अंकित किया है। वहाँ पण्डित-मण्डली और जन-सामान्य दोनों में अपने-अपने ढंग की प्रतिक्रिया होने लगी। कुछ पण्डित प्रकट रूप से उपहास करते, पर मन में अपने पक्ष की निर्बलता को भाँपकर सहम जाते। उत्पाती लोगों को अपना करतब दिखाने का एक और अवसर हाथ आया लगता। सैकड़ों लोग प्रतिदिन उनकी शास्त्र-चर्चा सुनने आते। कुछ सन्तुष्ट होते कुछ असन्तुष्ट। दिनभर उनके यहाँ मेला सा लगा रहता। मूर्तिपूजा के गढ़ में आकर कोई मूर्तिपूजा के खण्डन का साहस करे, यह अनहोनी घटना थी।

दयानन्द ने काशी-नरेश को कहला भेजा कि यदि सत्यासत्य का निर्णय करना चाहते हो तो अपने पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए तैयार करो। पण्डितों ने कहा कि दयानन्द तो वेद की दुहाई देता है और वेद के अतिरिक्त किसी और ग्रन्थ का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करता। हमको १५ दिन की मोहलत दी जाये, ताकि हम वेदों में से प्रमाण खोज सकें। मोहलत दे दी गयी। पण्डितमण्डली शास्त्रार्थ की तैयारी में जुट गयी। कोई-कोई अपने शिष्यों को भेजकर दयानन्द के पाण्डित्य की थाह लेने लगे। जब उनको पता लगा कि दयानन्द अगाध विद्या का धनी है तो वे और जोर-शोर से शास्त्रार्थ के दंगल की तैयारी में जुट गये। पन्द्रह दिन बीत गये।

मंगलवार १६ नवम्बर १८६९ को आनन्द बाग जहाँ स्वामी जी ठहरे थे, शास्त्रार्थ का निश्चय हो गया। दालान की खिड़की में स्वामी जी के लिये और सामने काशी के पण्डितों के लिए आसन लगा दिये गये। तीसरा आसन काशी नरेश के लिये लगा। काशी-नरेश द्वारा पण्डितों के आगमन के लिए पालकी, छत्र, चँवर आदि-आदि की व्यवस्था की गई, ताकि इस तामझाम को देखकर जनता पर उनकी शान-शौकत का प्रभाव पड़े। एक ओर था अपने सैकड़ों शिष्यों व सहस्त्रों अनुयायियों से घिरा पण्डित-दल और दूसरी ओर एकाकी कोपीनधारी बाल ब्रह्मचारी दयानन्द, विद्या ही जिसका शस्त्र था, सत्य ही जिसका किला था और परमात्मा ही जिसका एक मात्र सहायक था। हाँ, कोतवाल रघुनाथ प्रसाद के हाथ में सभामण्डप का पूर्ण प्रबन्ध था। सभामण्डप को चारों ओर से घेरकर लगभग पचास हजार विरोधियों ने शास्त्रार्थ से पूर्व ही जयकारे लगाकर सभा में शान्ति बनाये रखने के नियमों का उल्लंघन आरम्भ कर दिया।

कोतवाल ने जब देखा कि विरोधियों में असामाजिक तत्त्वों की संख्या भी काफी है, तब वह चिन्तित हो उठे, पर दयानन्द को कोई भय नहीं था। प्रश्नरूपी तीरों की अनवरत बौछार देव दयानन्द पर हो रही थी, पर तर्क-धनुर्धर दयानन्द तीरों को बीच में ही काट फेंकता था, किन्तु उसके लक्ष्यवेधी धनुष से फेंके हुए अमोघ बाण प्रतिपक्षियों के कवचों का छेदन करते चले जाते थे। स्वामी जी बारम्बार पूछते कि वेद में मूर्तिपूजा का विधान कहाँ है? प्रतिपक्षी इस मुख्य प्रश्न का उत्तर देने में स्वयं को असमर्थ पाकर वाद-विवाद को अन्य अवान्तर विषयों की ओर खींचने का उपक्रम करते, पर दयानन्द अवान्तर विषयों में भी उनके छक्के छुड़ा देते। तब पण्डितों ने चालाकी की शरण ली। दो पन्ने स्वामी जी के हाथ में देकर कहा, इनमें मूर्तिपूजा का विधान है, आप पढ़ लीजिये। स्वामी जी ने पन्ने हाथ में ले लिये। तब तक अँधेरा हो चुका था। लालटेन मँगवाई गई। उसकी रोशन मद्धिम थी। स्वामीजी ने पन्ने विशुद्धानन्द को लौटाते हुए पढ़ने को कहा। उन्होंने यह कहकर कि मैं चश्मे के बिना नहीं पढ़ सकता, इसलिए आपको ही पढ़ना होगा, पन्ने स्वामी जी को ही दे दिये थे। अस्पष्ट लिखाई वाले पन्नों को स्वामी जी पढ़ने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि पूरी पण्डितमण्डली उठ खड़ी हुई। स्वामीजी समझ गये कि धूर्तता हो रही है। उन्होंने विशुद्धानन्द का हाथ पकड़कर बैठने को कहा-निर्णय किये बिना आप जैसे विद्वानों को उठना कदापि उचित नहीं। विशुद्धानन्द बैठे तो नहीं, पर बोल पड़े, अब रहने दीजिये, जो होना था, वह हो चुका। पण्डितों का इशारा पाकर काशीनरेश भी उठ खड़े हुए और ताली पीट दी। फिर क्या था, सभी उपस्थित भीड़ ने जयकारे लगाने शुरु कर दिये। स्वामी जी के विरोध में कटु शब्द बोलने लगे।

कोतवाल रघुनाथ प्रसाद ने काशीनरेश से कहा कि आपने ताली पीटकर बहुत अनुचित किया है। यह नियम-विरुद्ध है। नरेश ने कोतवाल को समझाया-''हम-तुम सभी मूर्तिपूजक हैं। इसलिये अपने समान शत्रु को जैसे हो, पराजित करना ही चाहिए।'' यह कहकर काशी नरेश तो वहाँ से चले गये और जनता को मनमानी करने की छूट मिल गयी। स्वामी जी पर लक्कड़-कंकड़-पत्थर-गोबर-मिट्टी सब फेंके जाने लगे। हनुमान के समान मतिमान कोतवाल ने अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए स्वामी जी को खिड़की के भीतर किवाड़ की ओट में कर दिया और सिपाहियों को गुण्डों से निपटने का आदेश दे दिया। यदि कोतवाल रघुनाथ प्रसाद उस दिन यत्किंचित असावधान होते तो स्वामी जी के क्षत-विक्षत हो जाने में जरा भी सन्देह नहीं था। प्रतिपक्षियों ने स्वामी जी के विरोध में कुप्रचार के साथ-साथ पत्रक भी बाँटे, किन्तु जनता इनसे भ्रमित नहीं हुई और पण्डितों की दम्भपूर्ण चालाकी की पोल खोलने लगी और दयानन्द को विजयी ठहराते हुए उनके उपदेश-श्रवण हेतु बड़ी संख्या में आने लगी। लगभग चार मास काशी में रहकर २६ जनवरी १८७० ई. को स्वामी जी ने प्रयाग प्रस्थान किया। यत्र-तत्र वेदोपदेश व शास्त्रार्थ-विजय करते हुए स्वामी जी वर्ष समाप्त होते फिर काशी आ गए। इस बार काशी नरेश श्रीयुत ईश्वरी नारायण सिंह ने विनम्रता पूर्वक बग्घी भेजकर स्वामीजी को अपने राजगृह आमन्त्रित किया, अपने दुर्व्यवहार के लिये क्षमायाचनापूर्वक पश्चाताप व प्रायश्चित्त किया और चरण-वन्दनापूर्वक उनके उपयोग की वस्तुएँ भेंटकर विदा किया।

शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण तो अनेक शृंखलाओं में छपता ही रहेगा। यहाँ तो मैंने संकेत मात्र करते हुए कोतवाल पं. रघुनाथ प्रसाद का अभिनन्दन किया है। प्रख्यात प्रकाण्ड पण्डितों का अशोभन व्यवहार तो स्वामी जी के मस्तिष्क से वैसे ही तिरोहित हो गया, जैसे रेत पर खिंची लकीर मिट जाती है और कोतवाल का श्रेष्ठ, शोभन कर्त्तव्यपालन का सदाचरण धर्म-अध्यात्म जगती की शिला पर अंकित होकर पत्थर की लकीर बन गया। विश्व उनके प्रति अभिभूत हो गया। ऐसे ही मतिमान महावीर के लिए सन्त तुलसी ने कहा है-''चारों युग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा।।''

ऐतिहासिक कलम से....

वेद में स्त्रियों की स्थिति

पं. यशःपाल सिद्धान्तालंकार

यह लेख स्व. श्री यशःपाल जी सिद्धान्तालंकार की पुस्तक 'वैदिक सिद्धान्त' से लिया गया है। पं. सिद्धान्तालंकार जी आचार्य रामदेव (गुरुकुल कांगड़ी) के सुपुत्र थे। उन्हें आचार्य रामदेव जी की सैद्धान्तिक विचारधारा विरासत में मिली। यह लेख उसी विरासत का एक अंश है। यह लेख लोगों के मनोभावों को परिवर्तित कर वेद का प्रकाश फैलाने में सफल होना, ऐसा हमारा विश्वास है। -सम्पादक

सहस्त्रों अत्याचारों, अनाचारों और प्रवञ्चनाओं से युद्ध करके आज पाश्चात्य स्त्रियों ने अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की है और वे म्युनिसिपैलिटी, सीनेट, अदालत तथा अन्यान्य स्थानों में प्रवेश करने लगी हैं। स्त्रियाँ आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये नाना प्रकार की नौकरियाँ करने लगी हैं। विवाह या वैवाहिक जीवन को गुलामी समझने लगी हैं। विवाह को बन्धन मानकर उसमें प्रविष्ट होने से सङ्कोच करने लगी हैं। तुर्किस्तान, सोवियत रशिया, टर्की इत्यादि देशों में नारी स्वातन्त्र्य का बीज बोया जा चुका है। सतीधर्म की सर्वत्र हीनता प्रतिपादित की जा रही है। सतीत्व को गुलामी का कारण समझा जा रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन परिवर्तनों से थोड़े काल के लिये तो सम्भवतः देवियाँ प्रसन्न हों, परन्तु इसका परिणाम अन्ततोगत्वा अत्यन्त भयानक होगा, जिसको स्मरण करके हृदय काँप उठता है। इस आन्दोलन के भयंकर परिणाम अब भी अमेरिका और यूरोप के अहम्मन्य सभ्य देशों में देखे जा सकते हैं। जहाँ तक इस आन्दोलन का सम्बन्ध स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार, पर्दे का बहिष्कार करना, बहुविवाह की कुरीतियों को दूर करना, यथावसर देश की सेवा करने की योग्यता प्राप्त करना, उनको घर की दासी और भोगविलास का साधन न समझना, पशुओं के समान उनसे व्यवहार न करना, गृहस्थ कार्यों में उनकी सम्मति का मान होना, वेश्यालयों का सर्वथा उच्छेद इत्यादि बातों के साथ है वहाँ तक इस आन्दोलन के साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है और इसके सफल करने में पुरुषों को भी पूर्ण यत्न से देवियों को सहयोग देना चाहिये, परन्तु विवाह से पूर्व स्त्री-पुरुष का सहवास, बालकों तथा कन्याओं का सहशिक्षण, आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होने के लिये स्त्रियों का स्वयं नौकरी करना और बच्चों को आया के सुपुर्द करना इत्यादि बातें मानवजाति के सुख तथा शान्ति को नष्ट करने वाली हैं। इन बातों का परिणाम सर्वथा भयंकर होगा। फ़ारस में महिलाओं की एक समिति स्थपित हुई है, जिसके पाँच उद्देश्य हैं।

१- स्त्रियाँ स्वतन्त्र हों, उनमें से पर्दे की प्रथा उठा दी जाये।

२- समाज, राजनीति और देशसेवा में उनका अधिकार स्थापित हो।

३- सोलह वर्ष से कम की कन्याओं का विवाह न हो।

४- देश से बहुविवाह सर्वथा उठ जाये।

५- पुरुष की ओर से तलाक के समय दहेज या स्त्रीधन वसूल करने के लिए कुछ विशेष नियम बनाये जायें।

इन उद्देश्यों से किसकी सहमति न होगी? हमारा यह निश्चित मत है कि लैङ्गिक अयोग्यता (Sex disqualification) उड़ा देनी चाहिये। केवल स्त्री होना ही किसी देवी के लिये सार्वजनिक जीवन में भाग लेने में बाधक न हो, परन्तु हम यह भी मानते हैं कि स्त्री का कार्य गृहस्थ का संचालन करना है न कि सार्वजनिक संस्थाओं में जाकर व्याख्यान देना। स्त्रियों को अधिकार होना चाहिये, उनमें योग्यता होनी चाहिये कि आवश्यकता पड़ने पर वे देश तथा धर्म की सेवा करने के लिये सुलभा तथा दुर्गा बनकर मैदान में आयें, परन्तु साधारणतया उनका यह कार्य नहीं। वेद में एक मन्त्र आया है

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।

ऋ. १.१५९.३।

कुदरत ने दोनों (स्त्री-पुरुष) के स्वभावों तथा कार्यों में अत्यन्त भेद या विभिन्नता पैदा की है। स्त्रियाँ के सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने तथा युद्ध के मैदान में वीरता दिखाने के सैकड़ों दृष्टान्त प्राचीन भारतीय इतिहास में उपलब्ध होते हैं। अधिकार तथा योग्यता निर्विवाद है, परन्तु ये अधिकार समय

आने पर और अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर भयानक संकट के समयों में ही प्रयुक्त करने चाहियें। साधारणतया गृहस्थ का संचालन, बच्चों का पालन-पोषण और उन्हें देशभक्ति तथा धर्म की सेवा के लिये तैयार करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। इनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। इन महान् कार्यों का उत्तरदायित्व नौकरों को भी नहीं दिया जा सकता। यदि पति-पत्नी दोनों आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होने के लिये नौकरी पर चले जावें तो गृहस्थ तथा शिशुपालन का महत्त्वपूर्ण कार्य कौन करेगा। विवाह के समय वर अपनी पत्नी से यह मन्त्र पढ़वाता है कि-

आरोहमश्मानश्मेव त्वं स्थिरा भव।
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः।।

हे स्त्री, तू इस पत्थर पर चढ़ जा और इस पत्थर के समान दृढ़ बन। जो कोई तेरा विरोध करे अथवा तुझ पर आक्रमण करे, तू उसका सामना कर, उसको जीत ले। हमारे शास्त्र स्त्री को अबला नहीं बनाते। दुष्टों का दमन करने की शक्ति पैदा करने की आज्ञा भी देते हैं, परन्तु उसका मुख्य कार्य गृहस्थ धर्म का संचालन ही है।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यत्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।।

ऋ. १०.८५.३६।

अर्थात् ऐश्वर्य, सुसन्तानादि सौभाग्य की वृद्धि तथा कर्त्तव्यानुसार गृहस्थाश्रम ही विवाह का मुख्य उद्देश्य है।

एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसंरभस्व।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन्यज्ञः प्रतिकुम्भं गृभाय।।

अथर्व. ११.१.१४

इस मन्त्र में स्त्री के कर्त्तव्य बतलाये गये हैं।

१- स्त्री सबसे प्रथम आलस्य छोड़कर शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बल प्राप्त करे।

२- पतिव्रता धर्म का उत्तम पालन करके उत्तम सन्तान उत्पन्न करे। उनकी शरीर-वृद्धि तथा आत्मा का बल बढ़ाने योग्य उत्तम शिक्षा द्वारा उनको सुशिक्षित करके उत्तम सन्तानवाली बने।

३- अपने घर के कार्य स्वयं अच्छी तरह करके अपने घर को आदर्श गृह बनावे।

४- अन्य स्त्रियों को अपने घर बुलाकर स्त्रियों का मेल करके स्त्रियों की उन्नति करे।

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि।।

अथर्व. १४.१.२१

यहाँ स्त्री तथा उसकी संतति के लिये हित बढ़े। इस घर में घर की व्यवस्था के लिये सावधान रह। इस पति के साथ शरीर-सुख प्राप्त कर और ज्ञान-वृद्ध बनकर सभा में वक्तृत्व कर अथवा कर्त्तव्योपदेश कर। अर्थात् स्त्री अपनी प्रजा के लिये तथा अपने पति आदि के हित के लिये प्रयत्न करे। घर की व्यवस्था उत्तम रखे तथा ज्ञान प्राप्त करके यशस्विनी बने।

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम्।।

अथर्व. १४.१.४२

अर्थात् स्त्री अपने मन को सदा प्रसन्न रखकर, सन्तान, ऐश्वर्य और धन की कामना करे, पति के अनुकूल सदा ही अपना आचरण रखे तथा अपने सुख साधन ऐसे करे कि जो अमरत्व अर्थात् मोक्षरूप स्वातन्त्र्य को प्राप्त करानेवाले हों और बन्धन बढ़ाने वाले न हों।

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः।।

अथर्व १४.२.४३

(स्योनात् योनेः) सुखकारक घर में (अधिबुध्यमानौ) ज्ञान प्राप्त करते हुए, (हसामुदौ) हास्य और आनन्द करते हुए (सहसा मोदमानौ) प्रेम से परस्पर आनन्दित होकर, (सु-गू) उत्तम चालचलन करने वाले (सु-पुत्रौ) उत्तम पुत्रों से युक्त होकर (सुगृहौ) उत्तम घर बनाकर (जीवौ) जीवन को सार्थक करनेवाले होकर (विभातीः उषसः) तेजस्वी उषा-कालों को (तराथ) पार करो।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन प्रत्येक को करना चाहिये। तभी सुख तथा शान्ति प्राप्त हो सकती है। स्त्रियाँ अपने कार्य को पूरी तरह से निभायें। पुरुष अपना कार्य करें। एक-दूसरे को दीन, तुच्छ या छोटा न समझते हुए पारस्परिक सहयोग से कार्य करने से सर्वदा सुख होगा। आज स्त्री तथा पुरुष में सहयोग co-operation न होकर प्रतियोगिता competition का भाव बढ़ रहा है, जिसका आवश्यक परिणाम यही होगा कि गृहस्थ की सरलता

तथा मधुरता का सर्वथा नाश होकर मानव जाति में संघर्ष तथा दु:ख की वृद्धि होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में वैदिककाल में स्त्रियों की जो अवस्था थी, उसमें अब बहुत परिवर्तन आ गया है। उन दिनों वे विद्या की प्रकाण्ड पण्डित होती थीं। उन्होंने समय पड़ने पर पुरुषों से शास्त्रार्थ भी किये। रामायण काल में स्त्रियों की दशा उन्नत थी तथा समाज में उनको अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता था। जिस समय सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञा भुलाकर राजमहलों में आराम कर रहे थे, उस समय लक्ष्मण उनको उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाने गये थे। क्रुद्ध लक्ष्मण को आते देख और अपना कल्याण न समझ कर सुग्रीव ने तारा को सामने कर दिया था।

त्वद्दर्शने विशुद्धात्मा नास्मत्कोपं करिष्यति
न हि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित् कुर्वन्ति दारुणम्।।

अर्थात् तू सामने चली जा। तुझे देखकर लक्ष्मण का क्रोध शान्त हो जायेगा। क्योंकि आर्यजन स्त्रियों पर कठोरता नहीं करते। भगवान् राम दुष्ट रावण से क्यों लड़ने गये? क्योंकि उस नरपिशाच ने सती सीता का अपहरण किया। आज यदि कोई हमारी बहिनों तथा माताओं का हरण करता है तो पतित हिन्दू समाज उसका उद्धार करने की बजाय उस अबला को ही कोसता है। उसके चरित्र को हीन बतला कर उस असहाय निरपराधिनी को त्याग देता है।

महाभारत में भी भीम ने द्रौपदी के अपमान का बदला दु:शासन को मृत्युदण्ड देकर लिया था। मुसलमानी शासन में भी सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं कि हिन्दू जाति ने स्त्रियों के अपमान का बदला हमेशा लिया। आज विद्या प्रचार का अभाव दहेज की कुप्रथा इत्यादि कारणों ने स्त्रियों को अपने आदर्श से बहुत गिरा दिया है। हमारा कर्त्तव्य है कि उनका उद्धार करें, परन्तु यह स्पष्ट है कि पश्चिमीय नारी का अनुकरण भारतीय देवी के लिये किसी भी अवस्था में हितकर नहीं हो सकता। भारतीय देवी को प्राचीन भारतीय सभ्यता के ढंग पर ही अभ्युदय तथा उन्नति का यत्न करना चाहिये।

वेद स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को स्थिर बतलाता है और विवाह-विच्छेद की आज्ञा नहीं देता।

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ।

अ. १४.१.२२

अर्थात् स्त्री-पुरुष एक साथ रहें। कभी पृथक् न हों। अर्थात् विवाह सम्बन्ध तोड़कर एक-दूसरे का त्याग न करें। अपने घर में सुख अनुभव करने योगय परिस्थिति बनाकर अपने बाल-बच्चों के साथ आनन्द से रहते हुए ही सम्पूर्ण आयु तक जीवित रहें। इस मन्त्र में स्तं, वियौष्टं, अश्नुतम्, क्रीडन्तौ, मौदमानौ ये शब्द बलपूर्वक एक काल में एक पतिव्रत तथा एक पत्नीव्रत का आदेश कर रहे हैं।

हम भारतवर्ष में गार्गी, लीलावती, सुलभा जैसी विदुषियाँ तथा सीता, सावित्री-सी पतिव्रता देवियाँ पैदा करना चाहते हैं। इन्हीं से गौरव है। वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता, जिसके दुष्परिणामों से यूरोप के लोगों का सामाजिक तथा गार्हस्थ्य जीवन नरकमय बन गया है, के अनुसकरण करने की प्रवृत्ति को रोकना चाहते हैं। हमारे देश को पतिव्रता, सदाचारिणी तथा आत्म-बलिदान के भावों से पूर्ण और सेवा तथा सहृदयता के भावों वाली देवियों की आवश्यकता है। इस प्रकार वैदिककाल की स्त्रियों की अवस्था का विशद वर्णन करते हुए वैदिक सभ्यता के प्रकाश में वर्तमान समय की कुछ समस्याओं पर भी संक्षेप से विचार किया गया है। अन्त में

पूर्ण नारि प्रभर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम्।
इमां पातु मृतेना समंग्धीष्टापूर्तमभिरक्षत्येनाम्।।

हे नारी, अमृत रस से परिपूर्ण इस घड़े को सादर ला। अमृत से मिली हुई घृत की धारा को ला। पीने वाले को अमृत रस से तृप्त कर।

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्।

ऋग्वेद १०.१५९.२

मैं ज्ञानवती हूँ, घर की मुखिया हूँ, धैर्यवती हूँ, व्याख्यात्री हूँ। शत्रु का नाश करने वाली हूँ, इसलिये मेरा पति मेरी सलाह से कार्य करे।

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।।

ऋ. १०.१५९.३

अर्थात् मेरा पुत्र शत्रुनाशक हो। मेरी पुत्री तेजस्विनी हो और मैं स्वयं विजयिनी हूँ। मेरी ओर से पति के लिये उत्तम प्रशंसा हो।

गुरुकुल की ओर से

आर्यसमाज को युवा की आवश्यकता

ब्रह्मचारी नीलेश

आज आर्यसमाज को युवा वर्ग की आवश्यकता है। युवा पीढ़ी अपनी भारतीय संस्कृति, परम्परा और ऋषि-मुनियों द्वारा दिये गये ज्ञान-विज्ञान से दूर हो रही है और तो और जो अभी किशोर हैं या जिनकी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई वे भी जाने-अनजाने बड़ों के देखा-देखी वही कर रहे हैं।

यह सब देखकर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि अगले ४०-५० वर्षों में भारत किस मोड़ पर खड़ा होगा। आधुनिक विकास तो हो रहा है, परन्तु चारित्रिक विकास नहीं हो रहा है। यदि युवा को अभी सही मार्ग पर नहीं लाया गया तो हमारे पास बाद में पश्चात्ताप करने के सिवा कुछ भी नहीं बचेगा। जिस देश के लोगों की सत्य, धर्म और परम्परा ही मूल आधार था, जिसकी वजह से भारत सोने की चिड़िया और विश्वगुरु कहाता था, आज उसी भारत में सत्य, धर्म और परम्पराओं की क्या स्थिति है, आप अनुभव कर ही रहे होंगे। आज धर्म का मतलब सम्प्रदाय हो गया है। सब सम्प्रदायों के अलग-अलग सिद्धान्त और मान्यताएँ हैं, इसके कारण ही राजनेता लोग हमें, मैं हिन्दू, मैं मुस्लिम करके लड़वाते हैं। धर्म सही अर्थों में क्या है यह जानने की किसे पड़ी है। अभी हाल में हिन्दुओं का पर्व नवरात्रि आई थी, उसमें सब नौ दिन तक हे दुर्गा, हे दुर्गा करते हैं और बाद में दे मुर्गा, दे मुर्गा! यह हाल धर्म का हो गया है। इसी तरह सभी धर्म-सम्प्रदायों में धर्म के नाम पर देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए हर-वर्ष लाखों निर्दोष पशुओं की निर्दयतापूर्वक हत्या कर दी जाती है। जिस देश में एक कबूतर की जान बचाने के लिए अपने शरीर के एक-एक अंग को कटवा दिया हो, उसी देश में धर्म के नाम पर निर्दोष पशुओं को गाजर-मूली की तरह से यूँ ही काटा जा रहा है। यही हाल सत्य और परम्परा का भी है। सत्य कहने की ताकत अब किसी में नहीं है और तो और लोग सत्य सुनना भी नहीं चाहते, लोगों को झूठ में जीना बहुत अच्छा लगता है। आज आर्यसमाज के लोग भी सत्य से समझौता कर लेते हैं जिस आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द यह कहा करते थे कि ''चाहे कोई मेरी उँगलियों की बत्तियाँ बनाकर जला दे तो भी मैं सत्य कहने से पीछे नहीं हटूँगा,'' परन्तु आजके आर्यसमाजी थोड़े से धन के लालच में असत्य के सामने झुक जाते हैं।

आज युवा पीढ़ी अपनी वैदिक परम्परा को छोड़कर अज्ञानवश पाश्चात्य भोग-विलास की संस्कृति, नास्तिक विचारधारा को अपना रही है और ऋषि-मुनियों के द्वारा दी गई महान् विद्या से नई पीढ़ी दूर होती जा रही है। पूरे देश को यह पाश्चात्य भोग-संस्कृति अपने कब्जे में लेती जा रही है। इससे भारत का गौरव नष्ट होता जा रहा है। जब हमारा गौरव, स्वाभिमान नष्ट ही हो जाएगा तो फिर भारतमाता की जय और वन्देमातरम् करने से क्या फायदा। जय बोलने से किसी की जय नहीं होती है, जय करके दिखाना पड़ता है।

भारत माँ के लिए जिन महापुरुषों ने अपनी जान की कुर्बानी दी, क्या उन्हें भी अपनी जान प्यारी नहीं थी, वे भी मौज कर सकते थे, परन्तु नहीं, उन्होंने अपने देश के स्वाभिमान के लिए, सत्य, धर्म और परम्परा के लिए जान की कुर्बानी दी। वे जानते थे कि हमारा अस्तित्व और स्वाभिमान भारत है। भारत का स्वाभिमान, संस्कृति, परम्परा, सत्य और धर्म है, परन्तु आज का युवा वर्ग उस स्वाभिमान और गौरव को भूल गया। समस्या यह है कि कोई भी सम्प्रदाय, संगठन या कोई वर्ग सामने आकर सच्चे अर्थों में भारत के गौरव और वैदिक परम्परा की रक्षा नहीं कर रहा है। सबको अपनी-अपनी पड़ी है। भारत एक वीरभूमि है, जहाँ श्रीराम, श्रीकृष्ण, शिवाजी और महाराणा प्रताप जैसे महापुरुष पैदा हुए, उसी भारत की वीरभूमि आज वीरविहीन-सी प्रतीत होती है। जरुरत है इस बंजर हुई मिट्टी में स्वाभिमान भरे बीज बोने की, ताकि वीर स्त्री-पुरुष पैदा हों जो भारत माँ के गौरव और स्वाभिमान की रक्षा करें।

मात्र एक ही समाज है जो इस वीर-विहीन हो रही भारत-भूमि पर वीरता का बीज बो सके और वह है- आर्यसमाज, क्योंकि आर्यसमाज वेद को मानता है, ऋषि-मुनियों के बताये मार्ग पर चलता है, सत्य धर्म और वैदिक धर्म को मानता है। यही समाज है जिसने इस आधुनिकता के युग में अपनी ऋषि-परम्परा को जीवित रखा है। वही व्यक्ति, वही समाज या देश अपने स्वाभिमान और गौरव की रक्षा कर सकता है, जो अपनी संस्कृति और परम्परा की रक्षा कर सकता है, जरुरत है आर्यसमाज के प्रचार की। लेकिन ६० वर्ष के वृद्ध वक्ता और ६० वर्ष के वृद्ध श्रोता के सुनने और सुनाने से प्रचार नहीं हो सकता। उसके लिए चाहिएँ युवा-नौजवान, क्योंकि आज देश का युवा धर्म से विमुख हो गया है। अगर कोई युवा मंच से बोलेगा, घर-घर में जाएगा, अधर्म के विरुद्ध लड़ेगा और स्वाभिमान की बात करेगा तो युवा पीढ़ी जागेगी और वही युवा देश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न तरीके से प्रचार कर सकता है। जैसे कोई राजनीति में जाकर, बड़े पदों को प्राप्त कर बड़े स्तर पर देश का भला कर सकता है और कोई फिल्म इण्डस्ट्री में जाकर भारत के सच्चे इतिहास, शिक्षा व्यवस्था, वैदिक-धर्म की वैज्ञानिकता, गुरुकुलीय शिक्षा, भारतीय संस्कृति आदि विषयों को देश की जनता के सामने फिल्मों के माध्यम से पहुँचाये तो शायद युवा वर्ग प्रभावित हो। तीसरा उपाय यह कि आर्यसमाजियों के घर से एक बच्चा ऋषि दयानन्द के प्रति पूर्ण समर्पित हो। उस बच्चे से माता-पिता बिना कोई अपेक्षा किये उसे बचपन से ही ऐसे संस्कार दें, विचार दें ताकि उसे लगे कि मैं ऋषि के कार्य और अपनी परम्परा को एक नया जीवन देने के लिए जन्मा हूँ।

गुरुकुल ऋषि उद्यान, अजमेर।

ऋषि - बलिदान

जय ऋषियों के राज दुलारे।
जय जय साहस के अंगारे।।
जय कल्याण मार्ग अनुगामी।
जय निबलों के सबल सहारे।।
जय हो यतिवर जय संन्यासी।
जय हो भक्त प्रभु के प्यारे।।

जय जन नायक जय बलिदानी।
जय योगेश्वर प्यारे न्यारे।।
जय निर्भीक निपुण जननायक।
जय जय जाति के रखवारे।।
जय गुणियों के गौरव स्वामी।
जय हो आशा के उजियारे।।

जय त्रसितों के त्राण मुनिवर।
जय जय हो अभिमान हमारे।।
जय गोरों से लड़ने वाले।
जय नर नाहर जोगी प्यारे।।

तीन वर्ष के पूर्व वैराग्य

जो बुद्धिमान् पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के चाहने वाले नित्य पढ़ें पढ़के पढ़ावें तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण व्याकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध कर पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़-पढ़ा सकते हैं। किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण से होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में करना नहीं पड़ता औश्र जितनी बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता हैश उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता।

वर्णव्यवस्था से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं

जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस-उस वर्ण का अधिकार देना, ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होत हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को निम्न वर्ण में जाने से वर्णों को भय होगा कि हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल-चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिए उत्साह बढ़ेगा। **(स. प्र. स.)**

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ६ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	५१०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,००,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। -**संपादक**

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३१ अक्टूबर २०१९ तक)

१. श्रीमती मधुभाषिणी कपूर व श्री प्रेमप्रकाश कपूर, जयपुर २. डॉ. रीता पारीक, अजमेर ३. डॉ. वेदपाल, मेरठ ४. श्रीमती सुमन चोपड़ा, लन्दन ५. श्रीमती शान्ति सोनी, अजमेर ६. श्रीमती संगीता राठी मुजफ्फरनगर ७. श्री रामचन्द्र आर्य, सीतापुर ८. श्री तेजनारायण आर्य, पीलीभीत ९. श्री किशोर सिंह, ऋषि उद्यान, अजमेर १०. कर्नल सुधीर कुमार साहनी, नासिक ११. श्री सिद्धार्थ कुमार यादव, नई दिल्ली १२. श्री मुमुक्षु मुनि, ऋषिउद्यान, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ से ३१ अक्टूबर २०१९ तक)

१. श्री प्रमोद शर्मा, श्रीगंगानगर २. श्री राजबिहारी पारीक, अजमेर ३. कु. मञ्जु पारीक, अजमेर ४. श्री बनवारी लाल टाँक, नागौर ५. डॉ. रीता पारीक, अजमेर ६. श्री विवेक शेखर, मेरठ ७. श्रीमती सुमन चोपड़ा, लन्दन ८. श्री शैलेन्द्र कुमार, मेरठ ९. श्रीमती मुनेश बाला, मुजफ्फरनगर १०. श्री विनोद कुमार गुप्ता, मुरादाबाद ११. श्री धर्मसिंह, फरीदाबाद १२. श्रीमती नन्दी बाई, अजमेर १३. श्री किशोर सिंह, ऋषि उद्यान, अजमेर १४. श्री द्वारकाप्रसाद सेठी, अजमेर।

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है।

(स.प्र. स. ३)

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं।

(व्य. भा.)

काशी में ऋषि दयानन्द और काशी शास्त्रार्थ

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

काशी में 'मूर्तिपूजा वेद-विरुद्ध है' इस विषय पर स्वामीजी का जगत् प्रसिद्ध शास्त्रार्थ काशी-नरेश के सभापतित्व में १६ नवम्बर १८६९ ई. को हुआ। कदाचित् पिछले सैकड़ों-हजारों वर्षों की यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी कि एक ब्राह्मण कुलोत्पन्न संन्यासी पौराणिक धर्म के गढ़ काशी में 'मूर्तिपूजा' के विरुद्ध शास्त्रार्थ कर रहा था। कलकत्ता से लेकर लाहौर तक की पत्र-पत्रिकाओं में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि 'विद्या की नगरी काशी के पण्डित वेदों से मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं कर सके', 'स्वामी दयानन्द ने काशी के पण्डितों को जीत लिया'। इसका फल यह हुआ कि काशी-शास्त्रार्थ के बाद ऋषि दयानन्द की कीर्त्ति देश में (सर्वत्र) चारों ओर फैल गई। शास्त्रार्थ के बाद स्वामीजी का परिभ्रमण सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में होने लगा।

शास्त्रार्थ के बाद काशी में ऋषि दयानन्द ने दो और महत्त्वपूर्ण कार्य किये- (१) वैदिक पाठशाला और (२) वैदिक यन्त्रालय की स्थापना।

काशी में वैदिक पाठशाला- प्रारम्भ में स्वामीजी की यह धारणा थी कि स्थान-स्थान पर वैदिक पाठशालायें स्थापित की जायें और जो विद्यार्थी उनमें शिक्षा पाकर निकलें उनसे वैदिक-धर्म प्रचार कराया जाय। इसी विचार से स्वामीजी ने फर्रुखाबाद, कासगंज, छलेसर, मिर्जापुर और काशी में वैदिक पाठशालाओं की स्थापना की। काशी में पं. ज्योति:स्वरूप तथा पं. जवाहरदास उदासी दो ऐसे प्रसिद्ध पण्डित थे जो स्वामीजी से बहुत ही प्रेम रखते थे तथा मूर्तिपूजा को वेदविरुद्ध मानते थे। मिर्जापुर की संस्कृत पाठशाला जब टूटने लगी, तब स्वामीजी ने साधु जवाहरदास को इसकी सुव्यवस्था करने को कहा। जवाहरदास द्वारा मिर्जापुर में न रह पाने की असमर्थता व्यक्त करने पर स्वामीजी ने काशी में ही वैदिक पाठशाला स्थापित करने का सुझाव दिया। पं. जवाहरदास जी सहमत हो गये और स्वामीजी के सहयोग से दिसम्बर १८७३ ई. में केदारघाट पर एक गृह ३.७५ रु. मासिक किराये पर लेकर पौष कृष्णा २ संवत् १९३० को पाठशाला स्थापित की। उन्होंने २० ब्राह्मणों को उसके स्थापित होने के उपलक्ष्य में मिष्टान्न और एक-एक रुपया दक्षिणा दी। पं. शिवकुमार शास्त्री को (पं. कमलापति त्रिपाठी के नाना) जो पीछे आकर बनारस के दिग्गज पण्डितों में परिगणित हुए, १५ रु. मासिक पर अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ाने के लिए नियत किया गया। पण्डित शिवकुमार ने साधु जवाहरदास के पास स्वयं आकर पाठशाला में अध्यापन का कार्य करने की इच्छा प्रकट की थी। अन्य पण्डितों ने पण्डितजी को पाठशाला में कार्य करने से रोकना चाहा था, परन्तु वह नहीं माने और उन्होंने उत्तर दे दिया था कि मैं दयानन्द का मत नहीं मानूँगा, मैं तो केवल अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ाऊँगा। अष्टाध्यायी पढ़ने वाले छात्रों को ०.५० पै. और महाभाष्य पढ़ने वाले छात्रों को १रु. प्रतिमास प्रतिछात्र छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था की गई। अष्टाध्यायी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या २५ और महाभाष्य पढ़नेवालों की संख्या ८ हो गई थी। पाठशाला का नाम **'सत्यशास्त्र-पाठशाला'** रखा गया था। (द्रष्टव्य-घासीराम-महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित पृ. २८१-८२ चतुर्थावृति २०१८ विक्रमीय)

काशी में वैदिक पाठशाला को खुले हुए छ: मास हो गये थे। तब मई १८७४ में स्वामीजी काशी पधारे। 'स्वामीजी ने विद्यार्थियों की परीक्षा ली और परीक्षाफल से सन्तुष्ट हुए, परन्तु विद्यार्थियों को जो मासिकवृत्ति दी जाती थी वह उनके मनोनीत न हुई, अत: उसे बन्द कर दिया। पण्डित शिवकुमार से उन्होंने कहा कि आप वैदिक-धर्म का प्रचार कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि यदि आप ५०रु. मासिक वेतन दें तो कर सकता हूँ। स्वामीजी ने इसे स्वीकार न किया। पं. शिवकुमार वेदज्ञ न थे, अत: उनके स्थान में उन्होंने पं. गणेश श्रोत्रिय को नियत कर दिया जो वैदिक विषयों के अच्छे पण्डित थे, परन्तु वह वैयाकरण अच्छे न थे। अब तक पाठशाला केदारघाट पर थी। स्वामीजी ने उस स्थान को नापसन्द किया और वहाँ से उठाकर पाठशाला को दशाश्वमेध घाट पर ले गये। वहाँ एक गृह २रु. मासिक किराये पर लेकर उसमें पाठशाला की स्थापना की गई। पाठशाला के सम्बन्ध में स्वामीजी ने एक विज्ञापन भी

'कविवचन सुधा' (काशी) में २० जून सन् १८७४ को छपाया। यद्यपि यह पाठशाला भी चिरजीवी न हो सकी। फरवरी सन् १८७५ में पाठशाला टूट गई। किन्तु स्वामीजी द्वारा काशी में वैदिक पाठशाला स्थापना के प्रयत्न और एतदर्थ विज्ञापन पर ध्यान देने से यह अच्छी तरह प्रकट हो जाता है कि स्वामीजी केवल व्याकरण के अनार्ष ग्रन्थों को हटाकर अष्टाध्यायी-महाभाष्य के पठन-पाठन तक ही सीमित नहीं थे उनकी दृष्टि उपनिषद्, दर्शनशास्त्र और वैदिक संहिताओं पर थी, जिसे पढ़-पढ़ाकर विद्यार्थी अच्छे वैदिक विद्वान् बनकर सम्पूर्ण आर्यावर्त में वैदिक-धर्म का प्रचार-प्रसार करें और वेदों तथा आर्ष-ग्रन्थों के ही पठन-पाठन में प्रवृत्त हों। इसी कार्य के लिए स्वामीजी ने 'आर्य-सभा' की स्थापना की थी। ध्यान रहे उस समय तक 'आर्यसमाज' की स्थापना कहीं नहीं हुई थी।

वैदिक यन्त्रालय की स्थापना- काशी में स्वामी जी ने माघ शुक्ला २ संवत् १९३६ (१२ फरवरी १८८० ई.) में श्रीयुत महाराजा विजयनगरम् के स्थान लक्ष्मीकुण्ड पर सर्वप्रथम **वैदिक यन्त्रालय** की स्थापना की। इसके लगभग दो मास बाद चैत्र शुक्ला ६ संवत् १९३६ (१५ अप्रैल १८८० ई.) को श्रीयुत महाराजा विजयनगरम् के ही स्थान लक्ष्मीकुण्ड पर काशी में प्रथम 'आर्यसमाज' की स्थापना महर्षि के करकमलों से हुई। वैदिक यन्त्रालय की स्थापना से पूर्व ऋषि दयानन्द के निम्नलिखित ग्रन्थ काशी में ही निम्नांकित प्रेस से छपे थे-

(१) काशी शास्त्रार्थ (लाइट प्रेस) संवत् १९२६ (२) अद्वैतमत-खण्डनम् (लाइट प्रेस) संवत् १९२६, (३) वेदभाष्य का (दूसरा) नमूना (लाजरेस प्रेस) संवत् १९३३। वेदभाष्य का नमूना (प्रथम संस्करण) भी संवत् १९३१ में काशी में ही छपा था। (४) 'सत्यार्थप्रकाश' प्रथम संस्करण (स्टार प्रेस) संवत् १९३१ (१८७५ ई.) (५) पञ्चमहायज्ञविधिः (लाजरेस प्रेस) संवत् १९३४। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (लाजरेस प्रेस) संवत् १९३४। प्रथमतः 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' वेदभाष्य के अंकों के रूप में छपती थी। यह कुल १६ अंकों में पूरी हुई। १-१४ अंक तक लाजरेस प्रेस काशी में छपी। १५ वाँ तथा १६ वाँ सम्मिलित अंक निर्णय सागर प्रेस मुम्बई में छपा। इस ग्रन्थ के छपने में लगभग १३ मास का समय लगा। जब अपना प्रेस 'वैदिक यन्त्रालय' हो गया तब स्वामी जी के ग्रन्थ 'वैदिक यन्त्रालय' से ही छपने लगे। प्रारम्भ में वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धक मुंशी बख्तावर सिंह थे। इनके प्रबन्धकत्व में वैदिक यन्त्रालय काशी से स्वामी जी के निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए। (७) संस्कृतवाक्यप्रबोधः (१९३६ वि.) (८) व्यवहारभानुः (१९३६ वि.), (९) वर्णोच्चारण शिक्षा (१९३६ वि.), (१०) काशी-शास्त्रार्थ (१९३७ वि.), (११) सत्य-धर्म विचार (१९३७ वि.) (भाषा (हिन्दी) तथा उर्दू में भी) (१२) भ्रमोच्छेदन (१९३७ वि.)। १९३७ विक्रमी में ही वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धक लाला सादीराम नियुक्त हुए और इनके प्रबन्धकत्व में वैदिक यन्त्रालय काशी से निम्नांकित ग्रन्थ छपे-(१३) अनुभ्रमोच्छेदन (१९३७ वि.), (१४) गोकरुणानिधिः (१९३७ वि.), (१५) सन्धिविषयः (१९३७ वि.)। इसके बाद वैदिक यन्त्रालय पहले प्रयाग में और दूसरी बार अजमेर में स्थानान्तरित हो गया जो अब तक है।

भाषा में बोलना तथा वस्त्रधारण भी काशी में प्रारम्भ किया- १८७३ ई. में कलकत्ता में बाबू केशवचन्द्रसेन ने स्वामी जी को संस्कृत के बदले 'भाषा' (हिन्दी) में व्याख्यान देने का परामर्श दिया था। इसी प्रकार वस्त्रधारण करने का भी सेन महाशय तथा पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने स्वामी जी को परामर्श दिया। स्वामीजी ने दोनों परामर्शों को स्वीकार कर लिया। तदनुसार वस्त्रधारणपूर्वक, भाषा में व्याख्यान देने का शुभारम्भ स्वामीजी ने काशी में ही सर्वप्रथम मई १८७४ ई. में किया। 'भाषा' में बोलने का जब स्वामीजी ने निश्चय किया तो कई सुधीजनों ने टोका कि 'आप ऐसा न करें, परन्तु स्वामीजी नहीं माने और कहा कि जब हम किसी को कुछ समझाते हैं तो संस्कृत में होने के कारण पण्डितगण साधारण लोगों को उसका उल्टा ही समझा दिया करते हैं। इसलिए अब हम 'भाषा' में ही बोलेंगे। प्रारम्भ में सैकड़ों शब्द ही नहीं, प्रत्युत वाक्य के वाक्य संस्कृत में बोल जाते थे। क्योंकि 'भाषा' (हिन्दी) बोलने और लिखने का अभ्यास नहीं था।' (पण्डित लेखराम- ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र पृ. १६९)। बाद में धीरे-धीरे स्वामीजी की आर्यभाषा (हिन्दी) अत्यन्त ही परिमार्जित, परिशुद्ध, प्रवाहमयी और मुहावरेदार हो गयी।

काशी शास्त्रार्थ का प्रामाणिक विवरण- ऋषि दयानन्द के प्रसिद्ध काशी शास्त्रार्थ का विवरण शास्त्रार्थ से लगभग एक मास पश्चात् मार्गशीर्ष १९२६ वि. (दिसम्बर १८६९ ई.) में मुंशी हरवंशलाल की सम्मति से पं. गोपीनाथ पाठक ने बनारस लाइट प्रेस से पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया था। यह संस्कृत भाषा में तथा उसका हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक का नाम 'शास्त्रार्थ व सत्यधर्म विचार' था। यह २४ पृष्ठों की एक पुस्तिका थी जिसके प्रथम भाग में 'शास्त्रार्थ' का विवरण संस्कृत में तथा उसका भाषानुवाद भी था। द्वितीय भाग 'सत्यधर्म विचार' था जिसमें स्वामीजी के दिये एक दिन के उपदेश को प्रश्नोत्तर के रूप में केवल भाषा में छापा गया। इस भाग को लिखने का काम सम्भवत: मुंशी हरवंशलाल ने किया होगा। 'सत्यधर्म विचार' की सामग्री स्वामी जी ने छपने से पूर्व नहीं देखी थी और उन्होंने इसे लिखवाई भी नहीं थी। किन्तु 'शास्त्रार्थ' का विवरण स्वामीजी ने ही लिखवाया था। मुंशी बख्तावर सिंह के अनुसार यह 'शास्त्रार्थ' पुन: दूसरी बार सं. १९२७ में मुंशी हरवंशलाल ने स्टारप्रेस काशी से छपवाया। जनवरी सन् १८८० ई. (संवत् १९३६ विक्रमीय) के 'आर्यदर्पण' पत्रिका में यह 'शास्त्रार्थ' तीसरी बार छपा, इसमें आर्यभाषानुवाद के साथ उर्दू में भी शास्त्रार्थ का अनुवाद छपा। उर्दू अनुवाद तथा कई स्थलों पर नोट लिखने का कार्य मुंशी बख्तावर सिंह ने किया। यह अलग से 'काशी शास्त्रार्थ भाषा या उर्दू' नाम से पुस्तकाकार भी छपा। वैदिक यन्त्रालय काशी से प्रथम बार संवत् १९३७ वि. में जो काशी शास्त्रार्थ (संस्कृत तथा भाषा में) छपा वह 'आर्य दर्पण' में छपे संस्कृत तथा भाषा के अनुसार ही छपा था। इस प्रकार १९३७ वि. में प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ को चतुर्थावृत्ति के रूप में समझना चाहिए। ऋषि के जीवनकाल में पुन: १९३९ विक्रमीय में भी 'काशी शास्त्रार्थ' छपा। इस प्रकार ऋषि दयानन्द के जीवनकाल में कुल छह बार 'काशी शास्त्रार्थ' छपा। शास्त्रार्थ के इस विवरण को ऋषि ने स्वयं स्वस्मृति के आधार पर संस्कृत में लिखवाया था। उस समय के पत्र-पत्रिकाओं में शास्त्रार्थ की निष्पक्ष जो समीक्षायें छपीं, वह इसी शास्त्रार्थ-विवरण पर आधारित थीं। जो निष्पक्ष महानुभाव शास्त्रार्थ में उपस्थित थे, उनके द्वारा प्रकाशित विवरणों या बताये गये वक्तव्यों (जिनका संकलन पं. लेखराम तथा पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने स्वसंकलित ऋषि दयानन्द के जीवन चरित में किया है) से स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित 'शास्त्रार्थ' का विवरण पूरी तरह मेल खाता (समानता रखता) है।

इसके अतिरिक्त तीन अन्य विवरण भी काशी शास्त्रार्थ के छपे।

(१) **दयानन्दपराभूति:** संस्कृत भाषा में यह पुस्तक काशी नरेश के यन्त्रालय में छपी। इसमें कुछ का कुछ अर्थात् मनमानी रीति से पण्डितों ने स्वामीजी की बातों को, उनके अभिप्राय से बिल्कुल उल्टा प्रकाशित किया। यह पूर्णत: पक्षपातयुक्त था, जैसाकि पुस्तक के नामकरण से भी विदित होता है कि प्रकाशक का उद्देश्य स्वामी दयानन्द के पराभव की झूठी और कल्पित वार्त्ता से जनसाधारण को दिग्भ्रमित करना था।

(२) पौराणिक पण्डितों ने काशी शास्त्रार्थ की एक दूसरी पुस्तक '**दुर्जनमतमर्दन**' शीर्षक से भाषा में प्रकाशित की। १९ पृष्ठों की इस पुस्तक में पुराणों के वाक्यों की भरमार थी। समूची पुस्तक में एक भी वेदमन्त्र नहीं था। मूलशास्त्रार्थ के अतिरिक्त भी बहुत से वाक्य भर दिये गये, परन्तु वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रमाण देखने तक को नहीं। पं. लेखराम जैसे नीरक्षीरविवेकी मनस्वी ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में इस प्रकार टिप्पणी लिखी है-''**इसका अध्ययन करनेवालों पर पण्डितों की असभ्यता, अयोग्यता, वेद और शास्त्रों की अनभिज्ञता तथा असत्य की पराजय स्पष्ट प्रकट हो जाती है और इसी प्रकार राजा साहब का मिट्टी का माधो या महादेव होना भी प्रकट हो जाता है**'' (पं. लेखराम-ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र, पृ. १५६)।

(३) पं. सत्यव्रत सामश्रमी ने 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' के दिसम्बर १८६९ (संवत् १९२६ वि. मार्गशीर्ष मास) अंक सं. २८ में 'काशीस्थराजसभायां प्रतिमानपूजनविचार:', शीर्षक से प्रकाशित किया। इस पत्रिका में प्रकाशित विवरण भी पूरी तरह सत्य और प्रामाणिक नहीं है। जैसा कि 'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका' (संख्या ४ अप्रैल १८७० ई.) के सम्पादक ने लिखा है- उक्त पुस्तक (मुंशी हरवंशलाल द्वारा १९२६ वि. में 'सत्यधर्म विचार' शीर्षक से प्रकाशित) तथा पत्रिका ('प्रत्नकम्रनन्दिनी' में प्रकाशित) के वर्णनों में

परस्पर कुछ विरोध पाया जाता है। इस विरोध का कारण यह है कि सामश्रमी महाशय काशीनरेश की कृपा की चाह रखते थे अत: उन्होंने पौराणिक पक्ष का आश्रय लेते हुये स्वविवरण को प्रकाशित किया। यद्यपि सामश्रमी का विवरण पूरी तरह असत्य नहीं था जैसा कि पूर्वोक्त 'दयानन्द पराभूमि:' तथा 'दुर्जनमतमर्दन' नामक पुस्तकों में था। सामश्रमी द्वारा प्रकाशित विवरण से भी यह भलीभाँति विदित हो जाता है कि ''**काशीस्थ पण्डित स्वामीजी के प्रश्नों का न तो कोई उत्तर ही दे सके और न प्रतिमापूजन के पक्ष में एक भी वेदमन्त्र ही उपस्थित कर सके किन्तु बार-बार प्रसङ्गान्तर अवश्य करते रहे।**''

राजसभा में शास्त्रार्थ नहीं

यह शास्त्रार्थ काशीनरेश के सभापतित्व में अवश्य हुआ था किन्तु राजसभा में नहीं। यह शास्त्रार्थ दुर्गाकुण्ड के निकट आनन्द बाग (अमेठी नरेश राजा लाल माधोसिंह के स्थान) में हुआ। काशी नरेश श्री ईश्वरीनारायण सिंह के समक्ष राजसभा में शास्त्रार्थ करने का सुझाव पण्डित रघुनाथ प्रसाद कोतवाल ने स्वामी जी को दिया था किन्तु स्वामी जी ने स्पष्ट कह दिया कि '**हमारा यह नियम है कि जो हमारे पास आवे उससे, जब तक वह चाहे, शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं। अन्यथा यों तो हम कहीं नहीं जाते।**' (लेखराम- ऋषि का जीवन चरित्र पृ.-१४६) फलत: आनन्द बाग में शास्त्रार्थ का होना निश्चय हुआ। अत: इस शास्त्रार्थ विवरण को सामश्रमी द्वारा काशीस्थ राजसभायाम्...नामकरण देना काशी नरेश को प्रसन्न करने के लिए था।

सामश्रमी मध्यस्थ लेखक नहीं थे- 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' में सामश्रमी जी ने लिखा है-''**किञ्चात्र न मया कोऽपि मध्यस्थ: स्वीक्रियते, सर्वेषामेव मिथ्याचारित्वदर्शनात्**'' अर्थात्-''मैं किसी को मध्यस्थ नहीं स्वीकार कर सकता, क्योंकि सम्प्रति सभी लोग प्रतिमापूजन के मिथ्याचारों में लिप्त हैं'' स्वामी जी द्वारा ऐसा कहे जाने पर भी कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो पं. सत्यव्रत सामश्रमी को 'उभयपक्ष द्वारा नियुक्त वादी-प्रतिवादी के वचनों के यथावत् लिखने के लिए मध्यस्थ' के रूप में मानेगा? फिर मध्यस्थता वाली बात सामश्रमी ने इस शास्त्रार्थ का विवरण प्रकाशित करते समय 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' पत्रिका में न छापकर शास्त्रार्थ के ३७ वर्ष तथा ऋषि दयानन्द की मृत्यु के २३ वर्ष पश्चात् अपनी प्रकाशित पुस्तक 'ऐतरेयालोचन' (पृ. १२७) में इस प्रकार लिखी-'परमहो काश्यानन्दोद्यानविचारे यत्र वयमास्म: मध्यस्था:, विशेषतो वादिप्रतिवादिवचसामनुलेखनेऽहमेक एवोभयपक्षतो नियुक्त:...।' वस्तुत: वादी-प्रतिवादी के वचनों को लिखने का दायित्व काशीनरेश ने पं. सत्यव्रत सामश्रमी को सौंपा था जैसाकि पौराणिक पण्डितों द्वारा काशीनरेश के यन्त्रालय से प्रकाशित 'दयानन्द-पराभूति:' पुस्तक के इस उद्धरण से विदित होता है-

'सत्यव्रतसामश्रमिणं प्रति' 'लिख्यतां तावत् यथार्थतो वादिप्रतिवादिवच'-इत्याज्ञापयन्त-लेख्यकार्य्यनियुक्त: सामश्रमी यथावृतं शास्त्रार्थं लिखति तथा हि।

सामश्रमी द्वारा प्रकाशित विवरण में अन्य भी कई त्रुटियाँ हैं, जिनमें से कतिपय का उल्लेख यहाँ किया जाता है-

१. कल्मसंज्ञा वाले विषय में पं. लेखराम, पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय और पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि सभी निष्पक्ष मनीषी यह स्वीकार करते हैं कि स्वामीजी के प्रश्न का उत्तर किसी से भी देते नहीं बना। इस विषय पर शास्त्रार्थ में प्रश्नोत्तर इस प्रकार हुआ-

दयानन्द-व्याकरण में कल्मसंज्ञा किसकी है?

इस पर विशुद्धानन्द मौन साध गये। तब बालशास्त्री आगे बढ़े और कहा-''संज्ञा तो नहीं की है, परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है। तब स्वामी दयानन्दजी बोले कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है? यदि जानते हो तो इसका उदाहरण प्रत्युदाहरणपूर्वक समाधान कहो? तब बालशास्त्री और अन्यों ने भी कुछ नहीं कहा।''

इस प्रसङ्ग को सामश्रमी जी ने अन्यथा वर्णित कर काशीस्थ पण्डितों के पक्ष को दुर्बल होने से बचाने का प्रयास किया है-

विशुद्धानन्द-अरे बाबा! तू अभी कुछ पढ़ा नहीं, काशी में कुछ दिन पढ़।

दयानन्द-भवता सर्वं पठितम्?

विशुद्धानन्द-सर्वम्

दयानन्द-व्याकरणमपि?

विशुद्धानन्द-तदपि

दयानन्द-कल्मसंज्ञा कस्य?

बालशास्त्री-कल्मसंज्ञा महाभाष्य एकत्र परिहासेन कथिता, न सा प्रकृतसंज्ञा अपिच प्रकृतिविचारणे प्रवृत्तस्त्वं कथमप्रकृतं विचारयसि? पुराणादीनां वेदविरुद्धता कथं? तदेवोद्भावय।

दयानन्द-शृणु! शृणु! म्लेच्छभाषाध्ययनादेः पुराणादौ निषेधोऽस्ति, वेदे क्वास्ति?

सामश्रमी द्वारा इस प्रकार काशीस्थ पण्डितों की पक्षधरता सुतरां स्पष्ट है।

२.'श्री हरिकृष्ण व्यासः, श्री जयनारायणतर्कपंचाननः, श्री शिवकृपणो वेदान्तसरस्वती इत्येवमादयो विद्वांसः कतिपया वदन्ति' 'विचारस्तु सम्यक् न भूतः परं दयानन्दः पराजित इति तु सत्यम्।'

सामश्रमी ने स्वविवरण में उक्त वचन लिखा है। शास्त्रार्थ में पौराणिक काशीस्थ पण्डितों की ओर से उपस्थित इन विद्वानों की सम्मतियों को लिखने की क्या आवश्यकता थी? ज्ञातव्य है कि उक्त तीनों विद्वान् पौराणिकपक्षीय विद्वान् थे। काशी शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द के सम्मुख जो पौराणिक विद्वान् शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित थे, उनमें दायीं ओर ८ वें स्थान पर पं. जयनारायण तर्कवाचस्पति, १४ वें स्थान पर हरिकृष्ण व्यास तथा २५ वें स्थान पर शिवकृष्ण वेदान्ती थे (द्र. पं. लेखराम-ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र, पृ. १४४)।

काशीशास्त्रार्थ में अनेक दर्शक, निष्पक्ष, सज्जन तथा विद्वान् मनीषी भी थे उनकी सम्मतियाँ पं. सामश्रमी जी को उद्धृत करनी चाहिए थीं।

३. सामश्रमी जी ने स्वविवरण में काशीनरेश के सम्बन्ध में लिखा है- ''अहमपि वादिप्रतिवादिवचः सारानुवदने नियुक्तोऽग्रसरः पक्षपातशून्यो विचारदत्तकर्णः संयतोऽस्मि''। अर्थात्- मैं भी वादी-प्रतिवादी के वचनों को पक्षपातशून्य होकर ध्यान देकर सुनूँगा।

वही काशीनरेश शास्त्रार्थसमाप्ति पर कहते हैं-''दयानन्दो धृष्टो मूर्खश्च परं न एकेन केनचित्कोविदेन पराजेयः संभाव्यते। स हि षड्भिः कर्णो निपातित इति न्यायेन ध्वस्तबलो निरस्तः'' अर्थात् 'दयानन्द ढीठ और मूर्ख है, परन्तु किसी एक विद्वान् के द्वारा उसे पराजित करना सम्भव नहीं है। छः योद्धाओं के द्वारा जिस प्रकार कर्ण गिरा दिया गया उसी प्रकार वह दयानन्द भी ध्वस्तबलवाला कर दिया गया।''

स्वामी जी को धृष्ट और मूर्ख कहना काशीनरेश की अशिष्टता की पराकाष्ठा थी। भला ऐसा व्यक्ति कहीं पक्षपातशून्य हो सकता है? फिर स्वामी दयानन्दजी से शास्त्रार्थ करने वाले पण्डित एक-दो नहीं २७ (सत्ताईस) थे। महाभारत के कर्ण का उदाहरण इस प्रसङ्ग में समुचित नहीं जान पड़ता। अभिमन्यु को कर्ण आदि छः महारथियों ने अन्यायपूर्वक मार गिराया था। कर्ण कब छः महारथियों द्वारा गिराया गया? इस प्रकार के असम्बद्ध प्रमत्त प्रलाप (बड़बड़ाहट) से काशिराज की असभ्यता और अयोग्यता ही प्रकट होती है। पुनरपि इस प्रकार पक्षपातग्रस्त काशिराज के प्रति पं. सत्यव्रत सामश्रमी का यह लिखना- 'श्रीमन्महाराजस्तु गभीरधीश्चारुचक्षुर्दृष्ट्वाऽऽन्तम्...' (अर्थात्-गम्भीर बुद्धि और उत्तम आँखोंवाले श्रीमान् महाराज) अर्थलोभवश राजा की चाटुकारिता का उत्कृष्ट उदाहरण है। राज्याश्रय में रहनेवाले संस्कृत के विद्वानों द्वारा राजाओं की चाटुकारितापूर्ण मिथ्या प्रशंसा के उदाहरणों की संस्कृत साहित्य में कमी नहीं है। काशीशास्त्रार्थ के प्रमुख पौराणिक पण्डित बालशास्त्री ने रानी विक्टोरिया द्वारा भारतवर्ष का शासनाधिकार अपने हाथों में लेने पर उनकी प्रशंसा में महाकवि बाणभट्ट की प्रसन्न और प्राञ्जल शैली में अभिराम वचनावलि संस्कृत में लिखी थी, जिसे अत्यन्त ही आह्लादकता के साथ पं. बलदेव उपाध्याय ने 'काशी की पाण्डित्य परम्परा' नामक पुस्तक में पृष्ठ १९२ पर उद्धृत किया है।

काशीशास्त्रार्थ के सम्बन्ध में -पद्मविभूषण पं. बलदेव उपाध्याय का मिथ्यालेखन

काशीशास्त्रार्थ के सम्बन्ध में वास्तविकता को छिपाकर मिथ्या कपोलकल्पित लिखने की पौराणिक पण्डितों की परम्परा में पद्मविभूषण पं. बलदेव उपाध्याय का भी शीर्ष स्थान है। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'काशी की पाण्डित्य परम्परा' (विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण १९८३ ई.) में अपनी ओर से मिथ्या मनगढ़न्त बनाकर यह लिखा है- 'शास्त्रार्थ की समाप्ति पर दयानन्द जी चिन्तित तथा अन्यमनस्क हो गये। पराजय की पीड़ा उनके हृदय

को बेधने जो लगी। स्वामी विशुद्धानन्दजी तब दयानन्द की पीठ को अपने हाथों से ठोकते हुए बनारसी भोजपुरी में बड़े प्रेम से बोलने लगे-स्वामी, अभी नया मूँड मुँडौले हवा। कुछ दिन काशी में रहिकै पंडितन के साथ कुछ सीखऽऽ तब वेदशास्त्र के मरमऽऽ पता लगी। धरम के मरम समझल बड़ा कठिन काम हवे।''धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्'-त जनते हवऽऽ। उदास भइले कऽऽ अवसर कवन बाटे। विशुद्धानन्दजी की प्रेमभरी वाणी सुनकर दयानन्दजी मुस्कुराने लगे, प्रसन्न हुए और इसी प्रसन्न वातावरण में यह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। (काशी की पाण्डित्य परम्परा (द्वितीय भाग) पृ. ४२)।

पं. बलदेव उपाध्याय ने काशी-शास्त्रार्थ के इस विवरण के आधारग्रन्थ के रूप में पं. सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' में प्रकाशित विवरण को माना है और इस विवरण को पुनः प्रकाशित कर सर्वसुलभ कराने के लिये स्वामी केशवपुरीजी को धन्यवाद दिया है। उपाध्याय जी द्वारा प्रमाण रूप में निर्दिष्ट 'सच्चा काशी शास्त्रार्थ' (पं. मथुराप्रसाद दीक्षित द्वारा प्रकाशित) का स्वामी केशवपुरी द्वारा पुनर्मुद्रित संस्करण हमारे पास है, किन्तु इसमें कहीं भी उक्त उद्धरण नहीं है, जिसे उपाध्यायजी ने लिखा है। इसी से पण्डित बलदेव उपाध्याय के मिथ्या लेखन की पोल खुल जाती है। पं. बलदेवजी उपाध्याय इतना अधिक असत्य लिखने पर भी लज्जित नहीं हुए। जब स्व. पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने 'वेदवाणी' में अपने लेखों द्वारा काशी शास्त्रार्थ के वास्तविक विवरण से उन्हें अवगत कराया तो उपाध्यायजी ने 'वेदवाणी' में लिखा कि 'मुझे काशी-शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में आर्यसामाजिक साहित्य नहीं मिला। आपके (मीमांसकजी) द्वारा भेजी सामग्री का उपयोग अपनी पुस्तक के अगले संस्करण में करूँगा।' जबकि वस्तुस्थिति दूसरी थी। क्योंकि पं. बलदेव उपाध्यायजी के पास पं. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा काशीशास्त्रार्थ विषयक भेजी गई सामग्री पूर्व में ही विद्यमान थी। उन्होंने (उपाध्यायजी ने) अपनी इसी पुस्तक 'काशी की पाण्डित्य परम्परा' (द्वितीय भाग) के पृष्ठ ३७ पर वेदवाणी के विशेषांक (नवम्बर १९७० ई.) में काशी-शास्त्रार्थ में उपस्थित ४० चालीस विद्वानों की नामावलि से सहमति प्रकट की है तथा शास्त्रार्थ में जनता की उपस्थिति ६० हजार की संख्या को 'अतिशयोक्ति' लिखा है। इतना ही नहीं उपाध्याय जी ने स्पष्टतः अपने इस ग्रन्थ में वेदवाणी के नवम्बर १९७० ई. के अंक, पृष्ठ-१५ का उल्लेख किया है, फिर भी 'वेदवाणी' में सफेद झूठ लिखने से वे बाज नहीं आये कि 'मुझे काशी-शास्त्रार्थ के विषय पर अन्य सामग्री नहीं मिली, बड़ा प्रयत्न करने पर लाला लाजपतराय की लिखी एक उर्दू पुस्तक मिली।' उपाध्यायजी के इस मिथ्या लेख को स्व. मीमांसक जी ने सहज साधु स्वभाव के कारण सत्य मान लिया। जब मैंने इस सम्बन्ध में अनुसन्धान किया और सम्पूर्ण तथ्यों से अवगत हुआ तो अपने मित्र पं. प्रशस्यमित्र शास्त्री के साथ लगभग आज से ३३-३४ वर्ष पूर्व उपाध्याय जी से मिलने उनके आवास स्थान पर गया तो बहुत मुश्किल से वे मिलने को तैयार हुए। किन्तु बात प्रारम्भ होते ही उनके पुत्र या पौत्र आये और हम लोगों पर नाराज होते हुए अपने पिता या पितामह महोदय को लगभग धकेलते हुए बलपूर्वक घर के अन्दर ले गये। यह है पद्मविभूषण जैसे सम्मानित पदवी से विभूषित वाराणसेय पण्डिताग्रगण्य विद्वान् का असद् व्यवहार और मिथ्या लेखन का लज्जास्पद प्रसङ्ग।

अन्त में हम प्रसिद्ध सनातन धर्मावलम्बी विद्वान्, व्याकरण, काव्य, पुरातत्त्व और भाषा-विज्ञान के मर्मज्ञ तथा हिन्दी कथा साहित्य के अमरशिल्पी पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा काशी-शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में उनके लेख का आवश्यक अंश उद्धृत कर इस प्रसङ्ग को समाप्त करते हैं-

''और न वह समय आता जब एक वेदपाठी गुजराती संन्यासी काशी के पंडितों को खसूचि बनाकर छोड़ जाता...स्वामी दयानन्द धूमकेतु की तरह काशी में आ पहुँचे और अक्षोभ्य समुद्र की तरह काशी की सतह उनके आने से पेंदे तक हिल गई। लोग विस्मय से आँखें फाड़े हुये रह गये कि स्वामी जहाँ मन्त्रपाठ करनेवाले वैदिकों से मिलता है वहाँ उन्हें भाष्यव्यापी व्याकरण के ऊपर स्थित अर्थज्ञान से गूँगा कर देता है और नव्य वैयाकरण मिलते हैं, वहाँ वह 'घटो घटः' का तुषकंडन छोड़कर उन्हें अपने सीधा व्याकरण की चकाबू में गोते खिलाता है। जिन्होंने नव्य निर्दयता के साथ 'कल्मसंज्ञा' में उलझा दिया और जिन्हें सारा शतपथ ब्राह्मण कण्ठ था उन्हें एक शब्द का अर्थ पूछकर चुप कर दिया।'